क्रांतिधर्मी साहित्य - युग साहित्य - इक्कीसवीं सदी का मार्गदर्शक साहित्य

क्रान्तिधर्मी साहित्य-युग साहित्य नाम से विख्यात यह पुस्तकमाला युगद्रष्टा-युगसृजेता प्रज्ञापुरुष पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा १९८९-९० में महाप्रयाण के एक वर्ष पूर्व की अवधि में एक ही प्रवाह में लिखी गयी है। प्रायः २० छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में प्रस्तुत इस साहित्य के विषय में स्वयं हमारे आराध्य प.पू. गुरुदेव पं.श्रीराम शर्मा आचार्य जी का कहना था-"हमारे ये विचार, क्रान्ति के बीज हैं। ये थोड़े भी दुनियाँ में फैल गए, तो अगले दिनों धमाका कर देंगे। सारे विश्व का नक्शा बदल देंगे।....मेरे अभी तक के सारे साहित्य का सार हैं।.... सारे जीवन का लेखा-जोखा हैं।.... जीवन और चिंतन को बदलने के सूत्र हैं इनमें।.... हमारे उत्तराधिकारियों के लिए वसीयत हैं।.... अभी तक का साहित्य पढ़ पाओ या न पढ़ पाओ, इसे जरूर पढ़ना। इन्हें समझे बिना भगवान के इस मिशन को न तो तुम समझ सकते हो, न ही किसी को समझा सकते हो।.... प्रत्येक कार्यकर्त्ता को नियमित रूप से इसे पढ़ना और जीवन में उतारना युग-निर्माण के लिए जरूरी है। तभी अगले चरण में वे प्रवेश कर सकेंगे।.... यह इस युग की गीता है। एक बार पढ़ने से न समझ आए तो सौ बार पढ़ना और सौ लोगों को पढ़ाना। उनसे भी कहना कि आगे वे १०० लोगों को पढ़ाएँ। हम लिखें तो असर न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। जैसे अर्जुन का मोह गीता से भंग हुआ था, वैसे ही तुम्हारा मोह इस युग-गीता से भंग होगा।.... मेरे जीवन भर का साहित्य इस शरीर के वजन से भी ज्यादा भारी है। यदि मेरे जीवन भर के साहित्य को तराजू के एक पलड़े पर रखें और क्रांतिधर्मी साहित्य को दूसरे पलड़े पर, तो इनका वजन ज्यादा होगा।.... महाकाल ने स्वयं मेरी उँगलियाँ पकड़कर ये साहित्य लिखवाया है।.... इन्हें लागत मूल्य पर छपवाकर प्रचारित-प्रसारित (शब्दशः-अक्षरशः) करने की सभी को छूट है, कोई कापीराइट नहीं है।....मेरे ज्ञान शरीर को मेरे क्रान्तिधर्मी साहित्य के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करें।"....

इक्कीसवीं सदी
बनाम
उज्जवल भविष्य

(द्वितीय खण्ड)

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

काल चक्र स्वभावतः परिवर्तनशील है। जब कोई बड़ा परिवर्तन, व्यापक क्षेत्र में तीव्र गति से होता है, तो उसे क्रांति कहते हैं। क्रांतियों के बीच कुछ महाक्रांतियाँ भी होती हैं, जो चिरकाल तक जन मानस पर अपना प्रभाव बनाए रखती हैं। प्रस्तुत युग संधि काल भी एक महाक्रांति का उद्घोषक है। महाक्रांतियाँ केवल सृजन और संतुलन के लिए ही उभरती हैं।

महाकाल का संकल्प उभरता है तो परिवर्तन आश्चर्यजनक रूप एवं गति से होते हैं। रावण दमन, राम राज्य स्थापना एवं महाभारत आयोजन पौराणिक युग के ऐसे ही उदाहरण हैं। इतिहास काल में बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन, साम्यवाद और प्रजातंत्र की सशक्त विचारणा का विस्तार, दास प्रथा की समाप्ति आदि ऐसे ही प्रसंग हैं, जिनके घटित होने से पूर्व कोई उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता था।

युग सन्धि काल में, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना तथा अवांछनीयताओं के निवारण के लिए क्रांतियाँ रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह एक के पीछे एक दौड़ती चली आ रही हैं। उनका द्रुतगति से पटरी पर दौड़ना, हर आँख वाले को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगा। मनीषियों के अनुसार उज्ज्वल भविष्य की स्थापना के इस महाभियान में भारत को अति महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

विभीषिकाओं के अंधकार से झाँकती प्रकाश किरणें

इन दिनों जिधर भी दृष्टि डालें, चर्चा परिस्थितियों की विपन्नता पर होती सुनी जाती है। कुछ तो मानवी स्वभाव ही ऐसा है कि वह आशंकाओं, विभीषिकाओं को बढ़–चढ़कर कहने में सहज रुचि रखता है। कुछ सही अर्थों में वास्तविकता भी है, जो मानव जाति का भविष्य निराशा एवं अंधकार से भरा दिखाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण प्रगति कर दिखाई है। बीसवीं सदी के ही विगत दो दशकों में इतनी तेजी से परिवर्तन आए हैं कि दुनियाँ की काया पलट हो गई सी लगती है। सुख साधन बढ़े हैं, साथ ही तनाव–उद्विग्नता, मानसिक संक्षोभ–विक्षोभों में भी बढ़ोत्तरी हुई है। व्यक्ति अंदर से अशांत है। ऐसा लगता है कि भौतिक सुखों की मृग तृष्णा में वह इतना भटक गया है कि उसे उचित–अनुचित, उपयोगी–अनुपयोगी का कुछ ज्ञान नहीं रहा। वह न सोचने योग्य सोचता व न करने योग्य करता चला जा रहा है। फलतः संकटों के घटाटोप चुनौती बनकर उसके समक्ष आ खड़े हुए हैं।

हर व्यक्ति इतनी तेजी से आए परिवर्तन एवं मानव मात्र के, विश्व मानवता के भविष्य के प्रति चिंतित है। प्रसिद्ध चिंतक भविष्य विज्ञानी श्री एल्विनटॉफलर अपनी पुस्तक ‘फ्यूचर शॉक’ में लिखते हैं कि ''यह एक तरह से अच्छा है कि गलती मनुष्य ने ही की, आपत्तियों को उसी ने न्यौत बुलाया एवं वही इसका समाधान ढूँढने पर भी अब उतारू हो रहा है।

''टाइम'' जैसी प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका प्रतिवर्ष किसी विशिष्ट व्यक्ति को ‘मैन आफ द इयर’ चुनती है। सन् ८८ के लिए उस पत्रिका ने किसी को ‘मैन आफ द इयर’ न चुनकर, पृथ्वी, को ''प्लनेट आफ द इयर'' घोषित किया है। यह घोषणा २ जनवंरी [illegible] को की गई, जिसमें पृथ्वी को ‘एन्डेन्जर्ड अर्थ’ अर्थात प्रदूषण

के कारण संकटों से घिरी हुई दर्शाया गया। यह घोषणा इस दिशा में मनीषियों के चिंतन प्रवाह के गतिशील होने का हमें आभास देती है। क्या हम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं ? यह प्रश्न सभी के मन में बिजली की तरह कौंध रहा है। ऐसी स्थिति में हर विचारशील ने विश्व भर में अपने–अपने स्तर पर सोचा, अब की परिस्थितियों का विवेचन किया एवं भावी संभावनाओं पर अपना मत व्यक्त किया है। यह भी कहा है कि अभी भी देर नहीं हुई. यदि मनुष्य अपने चिंतन की धारा को सही दिशा में मोड़ दे, तो वह आसन्न विभीषिका के घटाटोपों से संभावित खतरों को टाल सकता है।

हडसन इंस्टीट्यूट न्यूयार्क के हरमन कॉन. वर्ल्डवाच इंस्टीट्यूट अमेरिका के लेस्कर आर ब्राउन, जो आँकड़ों के आधार पर भविष्य की रूपरेखा बनाते हैं, आज से ४०० वर्ष पूर्व फ्रांस में जन्मे चिकित्सक नोस्ट्राडेमस, फ्रांस के नार्मन परिवार में जन्मे काउन्ट लुई हेमन जिन्हें संसार 'कीरो' के नाम से पुकारता था, क्रिस्टल बॉल के माध्यम से भविष्य का पूर्वानुमान लगाने वाली सुविख्यात महिला जीन डीक्सन तथा क्रांतिकारी मनीषी चिंतक महर्षि अरविंद जैसे मूर्धन्यगण कहते हैं कि यद्यपि यह वेला संकटों से भरी है, विनाश समीप खड़ा दिखाई देता है, तथापि दुर्बुद्धि पर अंततः सद्बुद्धि की ही विजय होगी एवं पृथ्वी पर सतयुगी व्यवस्था आएगी। आसन्न संकटों के प्रति बढ़ी जागरूकता से मनीषीगण विशेष रूप से आशान्वित हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य को बीसवीं सदी के समापन एवं इक्कसवीं सदी के शुभारंभ वाले बारह वर्षों में, जिसे संधि वेला कहकर पुकारा गया है, अपना पराक्रम–पुरुषार्थ श्रेष्ठता की दिशा में नियोजित रखना चाहिए। शेष कार्य ब्राह्मी चेतना, दैवी विधि–व्यवस्था, महाकाल की प्रत्यावर्तन प्रक्रिया उससे स्वयं करा लेगी।

इन दिनों औद्योगीकरण के बढ़ने से चिमनियों से निकलता प्रदूषण हवा को और कारखानों का कचरा जलाशयों को, पीने का पानी देने वाली नदियों को दूषित करता चला जा रहा है। बढ़ती

आबादी के साथ ईंधन की खपत भी बढ़ी है। इस कारण वायुमंडल में बढ़ती विषाक्तता तथा अंतरिक्ष का बढ़ता तापमान जहाँ एक ओर घुटन भरा माहौल पैदा कर रहा है, वहीं दूसरी ओर ध्रुवों के पिघलने, समुद्र में ज्वार आने व बड़े तटीय शहरों के जल–राशि में डूब जाने का भी संकेत देता है। ऊँचे अंतरिक्ष में 'ओजोन' का कवच टूटने से, अयन मंडल पतला होता चला जाने से, ब्रह्मांडीय किरणों के वायरसों के धरातल पर आ बरसने की चर्चा जोरों पर है। युद्धोन्माद के कारण उड़ते जा रहे अणु–आयुधों, रासायनिक हथियारों की विभीषिका भी कम डरावनी नहीं है। बढ़ता हुआ आणविक विकिरण सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए प्रत्यक्षतः किस प्रकार संकट का कारण बन सकता है, यह हम कुछ वर्ष पूर्व सोवियत रूस के चेर्नोबिल रिएक्टर में हुए लीकेज एवं तद्‌जन्य परिणामों के रूप में देख चुके हैं।

सतत् कटते जा रहे वन, हरीतिमा की चादर को पृथ्वी से हटाते व भयंकर संकट मानव जाति के लिए खड़ा करते देखे जा सकते हैं। वर्षा की कमी, भूक्षरण, रेगिस्तानों का विस्मार, जल स्रोतों का समाप्त होते चले जाना, जलाऊ ईंधन का अभाव, वायु शोधन में अवरोध, तलहटी में आकर बैठी भारी मात्रा में मिट्टी के कारण हर वर्ष बाढ़ की त्रासदियाँ, मौसम असंतुलन के कारण अतिवृष्टि–ओलों की मार, ये ऐसे संकट हैं जो मनुष्य द्वारा अदूरदर्शिता से काटे जा रहे वनों व भूमि के संसाधनों के तेजी से दोहन के फलस्वरूप जन्मे हैं।

द्रुतगति से बढ़ती जा रही जनसंख्या हर क्षेत्र में अभाव उत्पन्न कर रही है। शहरों में गंदी बस्तियाँ बढ़ रही हैं, तो कस्बे फूलते नगरों का रूप लेते जा रहे हैं। कचरे की समस्या भी इसके साथ तेजी से बढ़ रही है। ईसवी संवत के प्रारंभ में, पूरे विश्व में ३० करोड़ व्यक्ति रहते थे। आज उसी पृथ्वी पर लगभग सत्रह गुने पाँच अरब से भी अधिक व्यक्ति रहते हैं। साधन सीमित हैं, उपभोग करने वाले अधिक । फलतः प्रगति कार्यक्रम की सफलता को न

केवल चुनौती मिल रही है, एक ऐसा असंतुलन उत्पन्न होने जा रहा है, जिससे अराजकता की स्थिति पैदा हो सकती है।

यौन क्षेत्र में बरती गई स्वेच्छाचारिता, बढ़ती कामुकता ने, यौन रोगों एवं असाध्य 'एड्स' जैसी महामारियों को जन्म दिया है। इसकी चपेट में क्रमशः एक बड़ा समुदाय आता जा रहा है जो विनाश की संभावना को प्रबल बनाता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। नशेबाजी जिस तेजी से बढ़ रही है, उसे देखते हुए लगता है कि स्मैक, हेरोइन, मारीजुआना जैसी घातक वस्तुएँ किशोरों युवकों व बेरोजगारों की एक बड़ी संख्या को विक्षिप्त स्तर का न बना दें ? जीवनी शक्ति घटती चली जा रही है। मौसम का जरा सा असंतुलन मनुष्य को व्याधिग्रस्त करता देखा जाता है. अस्पतालों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो हुई, किंतु प्रत्यक्षतः स्वस्थ, और परोक्ष रूप से मानसिक रोगी भी बड़ी तेजी से बढ़े हैं।

बिलासिता में कोई कमी आती नहीं दीखती। मँहगाई, बेरोजगारी की दुहरी मार, बढ़ी जनसंख्या को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। खर्चीली शादियाँ, जन साधारण को दरिद्र और बेईमान तथा नवविवाहिता वधुओं को बलि का शिकार बनाती देखी जाती हैं। दहेज ही नहीं, अन्यान्य कुरीतियों, मूढ़ मान्यताओं के कारण न जाने कितने घर एवं धन–साधन बर्बाद होते देखे जा सकते हैं। मिलावट–नकली वस्तुओं की भरमार है। अपराधी आक्रामकता, हिंसा की बाढ़ इस तेजी से आ रही है कि शांति और सुव्यवस्था पर भारी संकट लदता चला जा रहा है। पारस्परिक स्नेह सहयोग की भावना तो पलायन ही कर बैठी है। आदमी को अपनों की सद्भावना पर भी अब विश्वास नहीं रहा।

प्रस्तुत घटनाक्रम भयावह तो हैं ही, वास्तविक भी है। इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सूझ–बूझ एवं विश्व शांति की बात सोची जानी चाहिए थी, क्योंकि यह विश्व मानवता की, समूचे संसार की समस्या है। साहित्यकार, कलाकार, मनीषी, चिंतकों को बढ़कर आगे आना चाहिए था, पर इस विषम वेला में जितना कुछ

किया जाना है, उन आवश्यकताओं को देखते हुए विभूतियों का वर्तमान पुरुषार्थ छोटा ही नजर आता है.

समीक्षक–पर्यवेक्षक अगले दिनों की विभीषिका का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करते हैं, जिससे वर्तमान की अवांछनीयताएँ और भविष्य की अशुभ संभावनाएँ ही उभर कर सामने आती हैं। ऐसी दशा में हताशा का निषेधात्मक वातावरण बनना स्वाभाविक ही है। निराश मनःस्थिति अपने आप में एक इतनी बड़ी विपदा है, जिसके रहते व्यक्ति समर्थ होते हुए भी उज्ज्वल भविष्य की संरचना हेतु कुछ कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाता है। उत्साह उल्लास में कमी पड़ती है तथा मनोबल गिरता है।

हौसले बुलंद हों तो प्रतिकूलताओं के बीच भी थोड़े से व्यक्ति मिलजुलकर इतना कुछ कर सकते हैं, जिसे देखकर आश्चर्यचकित रहा जा सकता है। मानवी पराक्रम व भविष्य को बदल देने की उसकी सामर्थ्य, मनुष्य को प्राप्त ऐसी विभूति है जिस पर यदि विश्वास किया जा सके, तो यह मानकर चलना चाहिए कि निराशा के वातावरण में भी आशा का, उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं का उद्भव हो सकता है।

वस्तुतः परिवर्तन प्रक्रिया चल तो बहुत दिनों से रही थी, पर उसकी आरंभिक मंदगति को द्रुतगामी बनने का अवसर इन बारह वर्षों में मिला, ऐसा मनीषियों–दिव्यदर्शियों का मत है। ये बारह वर्ष बीसवीं सदी के समापन व इक्कीसवीं सदी के आगमन की मध्य वेला के कहे जा सकते हैं। इस अवधि को परस्पर विरोधी गतिविधियों से भरा देख रहे हैं। एक ओर दुष्प्रवृत्तियों की कष्टकारी दंड व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर देखी जा सकती है तो दूसरी ओर नूतन अभिनव सृजन के आधार भी खड़े होते देखे जा रहे हैं। इससे मन को असमंजस तो हो सकता है, पर युग संधि इसी को तो कहते हैं, जिसमें एक स्थिति जाती है, दूसरी आती है। दोनों प्रक्रियाएँ एक–दूसरे की पूरक होती हैं। पतझड़ के साथ–साथ वसंत की हरीतिमा अपने आगमन का परिचय देने लगती है। चारों

त्यागते समय जीव को दु:ख तो हो सकता है, पर नए जन्म का आनंद इसके बिना लिया भी तो नहीं जा सकता ? नश्तर चलाते समय सर्जन निर्दयता से फोड़े की चीर–फाड़ करते हैं, पर मवाद निकलने पर कष्ट मुक्ति का आनंद भी तो अपनी जगह है।

दूरदर्शियों, भविष्य द्रष्टाओं, अध्यात्म वेत्ताओं एवं पूर्वानुमान लगाने में सक्षम वैज्ञानिकों को इन दिनों चारों ओर एक व्यापक परिवर्तन की लहर दिखाई दे रही है। सभी इस तथ्य पर एक मत हैं कि यह समय यद्यपि कष्टकर हो सकता है, पर शीघ्र ही उज्ज्वल भविष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ती देखी जा सकेंगी।

भविष्य कथन विज्ञान सम्मत है या नहीं, इस पर कभी विवाद रहा होगा, किंतु अब स्वयं नृतत्वविज्ञानी, भौतिकविद यह कहने लगे हैं कि भविष्य कैसा होगा इसको काफी पूर्व जाना जा सकता है। तदनुसार अपने क्रिया–कलापों का सुनियोजन कर सकना भी संभव है। चंद्रमा पर अपना कदम रखने वाले अग्रणी अंतरिक्ष विज्ञानी 'नासा' के सुविख्यात डॉक्टर एडगर मिचैल का कहना है कि भविष्य कथन को विज्ञान की कसौटी पर कसना अब संभव है। यह कह पाना भी संभव है कि आने वाला समय कैसा होगा ? वे रचनात्मक दिशा में सोचते हुए कहते हैं कि भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है, क्योंकि आधुनिकता की दौड़ से हताश मानव जाति पूरी गंभीरता से उन प्रयोजनों में जुट रही है जो नवयुग के अरुणोदय का संकेत देते हैं। एक साक्षात्कार में उनने 'द मैन हू सॉ द फ्यूचर' नामक एक कृति, जिस पर वीडियो फिल्म भी बन चुकी है, में कहा है कि 'ह्वाट वी कन्टेम्प नेट टुडे, बिकम्स अवर फ्यूचर एण्ड इट इज गोइंग टू बि डॉन आफ ए न्यू एरा इन कमिंग फ्यू इयर्स, दिस कैन बी फोरसीन बाय विटनेसिंग द इवेण्ट्स।' अर्थात् जैसा हम आज सोचते–करते हैं वही हमारा भविष्य बन जाता है। आने वाले वर्ष नवयुग के अरुणोदय काल के होंगे, यह सुनिश्चित है । यह आज के सृजन प्रयासों को देखकर कहा जा सकता है।

ज्योतिषियों के भविष्य ज्ञान पर किसी को संदेह हो सकता है,

पर संसार में समय-समय पर ऐसे सूक्ष्मदर्शी अतीन्द्रिय क्षमता संपन्न भविष्य द्रष्टा जन्मे हैं, जिनने आने वाले वर्षों से लेकर सदियों तक के बारे में जो कुछ कहा-वह सच होकर रहा। अब जो उनके कथन प्रकाश में आए हैं वे इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल होने की संभावना ही दर्शाते हैं। इनमें वैज्ञानिक भी हैं, चिकित्सक भी, गुह्यविज्ञानी एवं रहस्य विज्ञान के मनीषी भी और अध्यात्मवेत्ता भी। यही नहीं ऐसे सामान्य व्यक्ति भी इनमें हैं, जिनमें अंतःस्फुरणा उठी, पूर्वाभास की क्षमता जाग उठी एवं भविष्य के गर्भ में झाँक कर वे जो कुछ भी भविष्य कथन कर पाने में समर्थ थे, वह अंततः सत्य निकला। ऐसे कुछ संस्थान-संगठन भी हैं जो विश्व स्तर पर भविष्य विज्ञान नामक विधा पर ही चिंतन करते हैं एवं आँकड़ों-तथ्यों, घट रही घटनाओं, प्रचलनों आदि के सहारे अपना अनुमान लगाते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में इनके कथन बड़े प्रामाणिक माने जाते हैं, ये सभी एक ही अभिमत व्यक्त करते हैं कि मनुष्य अपनी चाल निश्चित ही बदलेगा।

शांतिकुंज हरिद्वार ने भी इस विषय पर गहरा चिंतन व शोध कार्य कर यही निष्कर्ष निकाला है। विशद अध्ययन, परिस्थितियों के आंकलन पर तो यह अनुमान आधारित है ही, भविष्य के विषय में पूर्वाभास की भी अपनी बड़ी भूमिका रही है। जैसे अन्यान्यों को पूर्वानुमान होता रहा है, ठीक उसी प्रकार यह अंतःस्फुरणा इस तंत्र के संचालक-संस्थापक को भी होती रही है कि भविष्य उज्ज्वल होगा, विपन्नताओं के बादल छटेंगे एवं शीघ्र ही नवयुग का अरुणोदय होगा। प्रत्यक्षतः ५ लाख पत्रिकाओं के माध्यम से पच्चीस लाख प्रबुद्ध पाठकों का एवं परोक्ष रूप से करोड़ों व्यक्तियों का परिकर इस मिशन से, सूत्र संचालक से जुड़ा है। इन सबको यही आश्वासन दिया जा रहा है कि इक्कीसवीं सदी नूतन उज्ज्वल

संभावनाएँ लेकर आ रही है। आवश्यकता है कि उस स्वर्णिम प्रभात की अगवानी हेतु विश्व भर के आशावादी मनीषी, प्रतिभा संपन्न सृजनशिल्पी एक जुट हों एवं अन्यान्यों का भी मनोबल बढ़ाएँ। इन बारह वर्षों में संभावित प्रतिकूलताओं को निरस्त करने के लिए सभी धर्म, जाति, पंथ मतों के व्यक्तियों के लिए एक सामूहिक महापुरश्चरण सविता के ध्यान एवं सद्बुद्धि की अवधारणा के रूप में शांतिकुंज में आरंभ किया गया है, सभी को इसमें सहभागी बनने का खुला आमंत्रण है।

पुण्य का परिणाम सम्पति नहीं सद्बुद्धि है और पाप का परिणाम गरीबी नहीं कुबुद्धि है।

मानवी दुर्बुद्धि से ही उपजी हैं आज की समस्याएँ

कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है, किंतु फल प्राप्त करने में वह सृष्टि के नियमों के बंधनों में बँधा हुआ है। अन्य जीवधारी इस तथ्य को अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से समझते हुए तद्नुरूप आचरण करते रहते हैं, पर मनुष्य है जो तुर्त–फुर्त परिणाम मिलने में विलंब होने के कारण प्रायः चूक करता रहता है। अदूरदर्शिता अपनाता है और यह भूल जाता है कि विवेकशीलता की उपेक्षा करने पर अगले ही दिनों किन दुष्परिणामों को भुगतने के लिए बाधित होना पड़ेगा। यह वह भूल है जिसके कारण मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक गलतियाँ करता है, फलतः उलझनों–समस्याओं, विपत्तियों का सामना भी उसे ही अधिक करना पड़ता है। कोई समय था जब मनुष्य अपनी गरिमा का अनुभव करता था एवं स्त्रष्टा का युवराज होने के नाते, अपने चिंतन और कर्तृत्व को ऐसा बनाए रहता था कि सुव्यवस्था बने और किसी को किसी प्रकार की प्रतिकूलताओं का सामना न करना पड़े।

इस संसार में इतने साधन मौजूद हैं कि यदि उनका मिल–बाँटकर उपयोग किया जाए तो किसी को किसी प्रकार के संकटों का सामना न करना पड़े। प्राचीनकाल में इसी प्रकार की सद्‌बुद्धि को अपनाया जाता रहा है। कोई कदम उठाने से पहले यह सोच लिया जाता था कि उसकी आज या कल–परसों क्या परिणति हो सकती है ? औचित्य को अपनाए भर रहने से वह सुयोग बना रह सकता है जिसे पिछले दिनों सतयुग के नाम से जाना जाता था। सन्मार्ग का राजपथ छोड़कर उतावले लोग लंबी छलांग लगाते और कँटीली झाड़ियों में भटकते हैं। स्वार्थ आपस में टकराते हैं और अनेकानेक समस्याएँ पैदा होती हैं।

दूरगामी परिणामों पर विचार न करके जिन्हें तात्कालिक लाभ ही सब कुछ लगता है, वे चिड़ियों–मछलियों की तरह जाल में

फँसते और चासनी पर आँखें बंद करके टूट पड़ने वाली मक्खी की तरह पंख फँसाकर बेमौत मरते हैं। दुर्बुद्धि का यही कुचक्र जब असाधारण गति से तीव्र हो जाता है तब उलझनें भी ऐसी ही खड़ी होती हैं कि जन–जन को विपत्तियों के दल–दल से उबरने नहीं देती।

क्रिया की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने में बहुधा विलंब लग जाता है, इसी कारण कितने ही लोगों में संदेह उत्पन्न हो जाता है कि जो किया है उसकी तद्नुरूप परिणति होना आवश्यक नहीं। कई बार बुरे कार्य करने वाले भी उन पाप–दंडों से बचे रहते हैं, कई बार अच्छे कर्म करने पर भी उनके सत्परिणाम दीख नहीं पड़ते। इससे सोचा जाता है कि सृष्टि में कोई नियमित कर्मफल व्यवस्था नहीं है, यहाँ ऐसा ही अंधेर चलता है। ऐसी दशा में स्वेच्छाचार बरता जा सकता है, ऐसे लोग प्रतिक्रिया उत्पन्न होने में जो समय लगता है उसकी प्रतीक्षा नहीं करते और नास्तिक स्तर का अविश्वास अपनाकर जो भी सूझता है उसे कर बैठते हैं। यह भुला दिया जाता कि बीज का वृक्ष बनना तो निश्चित है, पर उसमें देर लग जाती है। दूध को दही बनने में भी कुछ समय तो लग ही जाता है। असंयम बरतने वाले अपने अनाचार का दंड तो भुगतते हैं, पर उसमें भी समय लगता है। नशेबाज का स्वास्थ्य बिगड़ता और जीवनकाल घटता जाता है, पर वह सब कुछ तुरंत ही दीख नहीं पड़ता।

यदि झूठ बोलते ही मुँह में छाले पड़ जाते, चोरी करते ही हाथ में लकवा मार जाता, व्यभिचारी नपुंसक हो जाते तो किसी को अनर्थ करने का साहस ही न होता, पर भगवान ने मनुष्य की समझदारी को जाँचने के लिए कदाचित् इतना अवसर दिया है कि वह उचित–अनुचित का निर्णय कर सकने वाली अपनी विवेक बुद्धि को जागृत करे। उसका सही उपयोग करके औचित्य अपनाए और सही मार्ग पर चले। इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वालों को दंड तो मिलता है पर देर में। वस्तुस्थिति के कारण उन्हें पश्चाताप तो करना ही पड़ता है, साथ ही अदूरदर्शिता अपनाने की आदत पड़

जाने से, पग–पग पर भूल करने और ठोकरें खाने की दुर्गति भी सहन करनी पड़ती है, इसके विपरीत जो सोच समझ सकते हैं और परिणामों को ध्यान में रखते हुए अपनी वर्तमान गतिविधियों को सुनियोजित करते हैं वे जीवन संपदा का सदुपयोग करके स्वयं धन्य होते और अपने अनुकरण का अवसर देकर अनेकों का भला करते हैं। मनुष्य को ईश्वर ने जो अनेकानेक विशेषताएँ विभूतियाँ प्रदान की हैं उनमें से एक यह भी है कि वह क्रिया की प्रतिक्रिया का अनुमान लगा सके और अनिष्टों से बचते हुए सुख–शांति का जीवन जी सके।

इन दिनों स्नेह–सद्भाव, सहकार–सदाचार की कमी पड़ने से मनुष्य का व्यवहार ऐसा विचित्र बन गया है जिसमें शोषण ही प्रधान दिखाई पड़ता है। सहयोग के आधार पर तो परस्पर हित साधन की प्रक्रिया चलती रह सकती है, किंतु जहाँ व्यक्तिवाद की आपाधापी ही सब कुछ हो वहाँ यह समझ में नहीं आता कि संकीर्ण स्वार्थपरता अपना लेने पर दूसरों के अधिकारों को क्षति पहुँचती है या नहीं ? यह स्थिति ऐसी है जिसमें दूसरों के कष्ट–संकट और अहित की ओर ध्यान जाता ही नहीं, मात्र अपना ही लाभ सूझता है। अनाचार–अत्याचार, शोषण, अपहरण, उत्पीड़न के मूल में यही वृत्ति काम करती है। निःसंकोच जघन्य कृत्य करने वाले वे ही होते हैं जिन्हें दूसरों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। अपने तनिक से लाभ के लिए वे दूसरों पर पहाड़ जितना संकट उड़ेल सकते हैं, इस अनर्थ मूलक प्रवृत्ति की, मानव धर्म के प्रतिपादकों ने भरपूर निंदा की है और कहा है कि 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' वाली भाव संवेदना को सँजोए ही रहना चाहिए। जो व्यवहार हमें अपने लिए पसंद नहीं, वह दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिए। सब में अपनी ही आत्मा को देखने का तात्पर्य है दूसरों के दुःखों को अपना दुःख और दूसरों के सुख को अपना सुख माना जाए। मानवी स्तर की भाव संवेदनाओं का उद्गम इसी मान्यता के साथ जुड़ा हुआ है, इसे यदि हृदयंगम कर लिया जाए तो अनाचार बरत सकना संभव

न होगा। सेवा–सहायता के लिए मन चलेगा, दुःख बाँट लेने और सुख बाँट देने की उदारता बनी रहेगी।

अपनत्व को सिकोड़ लेना क्षुद्रता है और उसे व्यापक बनाकर चलना महानता। महामानव पुण्य–परमार्थ की बात सोचते, योजना बनाते और गतिविधि अपनाते रहते हैं, यही आत्म–विकास है। विकसित व्यक्ति का अपनापन मनुष्य मात्र में, प्राणी मात्र में फैल जाता है। ऐसी दशा में जिस प्रकार अपने लिए सुख साधन जुटाने की इच्छा होती है, उसी प्रकार यह भी सूझता है कि दूसरों को सुखी रहते देखकर अपना भी मन हुलसे, दूसरों के दुःख में हिस्सा बँटाने के लिए, सेवा–सहायता हेतु दौड़ पड़ने की आतुरता उमगे। यदि इस मानवी मर्यादा का परिपालन होने लगे, तो कोई किसी के साथ अनीति बरतने की कल्पना ही मन में न उठने दे।

हर प्रकार के आचरण का मूल कारण है, अदूरदर्शिता, अविवेक। किस कृत्य का भविष्य में क्या परिणाम होगा ? इसका दूरवर्ती अनुमान न लगा पाने पर तात्कालिक लाभ ही सब कुछ हो जाता है, भले ही उसके साथ अनीति ही क्यों न जुड़ी हो। जिस प्रकार दृष्टि–दोष होने पर मात्र नजदीक की वस्तु ही दीख पड़ती है और दूर पर रखी हुई वस्तुओं को पहचान सकना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार अदूरदर्शी तुरंत लाभ को सब कुछ मानते हुए उसे किसी भी कीमत पर पूरा करने के लिए जुट जाते हैं। इसके बाद इसकी परिणति क्या हो सकती है ? इसका अनुमान तक अदूरदर्शी लोग लगा नहीं पाते, आँखें रहते हुए भी यह अंधे जैसी स्थिति है। जिनका स्वभाव ऐसा बन जाता है वे तत्काल भले ही कुछ लाभ उठा लें पर अपनी प्रामाणिकता खो बैठते हैं। हर किसी की दृष्टि में अविश्वस्त बन जाते हैं, कोई उनका सच्चा मित्र नहीं रहता, उन्हें परामर्श देने या लेने योग्य भी नहीं समझा जाता, शंका दृष्टि बनी रहती है। सच्चे सहयोग के अभाव में, अविश्वस्त वातावरण में वे भीड़ के बीच रहते हुए भी अपने को एकाकी अनुभव करते हैं। एकाकीपन कितना नीरस, कितना निस्तब्ध और

डरावना होता है, इसे हर भुक्तभोगी भली प्रकार जानता है। अविवेक के कारण स्वभाव में अनेकानेक अवाँछनीयताएँ सम्मिलित हो जाती हैं, दुर्व्यसनों की आदत पड़ जाती है। आलस्य–प्रमाद, छल–प्रपंच, अतिवाद–अहंकार, लिप्सा–तृष्णा जैसे अनेक अनौचित्य बिना बुलाए ही साथ हो जाते हैं। प्रामाणिकता चली जाने पर न तो प्रखरता शेष रहती है और न प्रतिभा ही व्यक्तित्व के साथ जुड़ी रह जाती है। चोर–चालाकों का मानस सदा भयभीत बना रहता है, अनिष्ट की आशंकाएँ बनी रहती हैं और संदेह करते, संदेहास्पद स्थिति में बने रहते ही समय गुजरता है। इसके प्रतिफल प्रतिशोध के, घृणा–तिरस्कार के रूप में वापिस लौटते हैं, संसार के दर्पण में अपनी ही कुरूप छाया दीख पड़ती है।

कुछ देर के लिए किसी को मूर्ख बनाया जा सकता है, पर सबको सदा के लिए गफलत में रखा जा सके, यह संभव नहीं। अपने द्वारा किए गए दुर्व्यवहार किन्हीं अन्यों के द्वारा अपने ऊपर प्रतिक्रिया बनकर टूटते हैं, जिसने औरों को ठगा वह किन्हीं अन्यों के द्वारा ठगा जाए, ऐसे घटनाक्रम आए दिन घटित होते देखे जाते हैं। असंयम बरतने वाले तत्काल न सही कल–परसों उसकी दुःखदाई प्रतिक्रिया से दंडित हुए बिना नहीं रहते।

मनुष्य–मनुष्य के बीच दीख पड़ने वाले दुर्व्यवहारों की परिणति इन दिनों हर क्षेत्र में समाप्त होती चली जाती है। जब विश्वास ही नहीं जमता तो सहयोग किस बलबूते पर पनपे ? टूटे हुए मनोबल का व्यक्ति किस प्रकार कोई उच्चस्तरीय साहस कर सकेगा ? उसके ऊँचे उठने, आगे बढ़ने का सुयोग कैसे बनेगा ?

मनुष्य–मनुष्य के बीच छाया हुआ छद्म, अविश्वास, असहयोग, अनाचार, चित्र–विचित्र प्रकार के उद्वेग, असंतोष और दुर्व्यवहार उत्पन्न करते देखा जाता है। फलतः धनी–निर्धन, शिक्षित–अशिक्षित सभी को अपने–अपने ढङ्ग की कठिनाइयाँ त्रास देती दीख पड़ती हैं। अधिकांश लोगों को श्मशान के भूत–पलीतों की तरह जलते–जलाते, डरते–डराते, उद्विग्न और असंतुष्ट

स्थिति में देखा जाता है। यदि सुविधा–साधनों का बाहुल्य रहा तो भी उससे क्या कुछ बनता है ? बाहर वालों को सुखी–संपन्न दीखना और बात है। कितने ही साधनों से संपन्न क्यों न हों, उनका अपनी दृष्टि में अपना मूल्य गई–गुजरी स्थिति में बना रहेगा, असंख्य समस्याएँ और चिंताएँ उन्हें घेरे रहेंगी।

आज इसी स्थिति में जन साधारण को फँसा देखा जा सकता है। प्रगति के नाम पर सुविधा–साधनों की अभिवृद्धि होते हुए भी चिंतन, चरित्र और व्यवहार में निकृष्टता भर जाने के कारण जो कुछ चल रहा है वह ऐसा है जिसे निर्धनों, अशिक्षितों और पिछड़े स्तर के समझे जाने वालों की तुलना में भी अधिक हेय समझा जा सकता है। इसे प्रगति कहा जाता भले ही हो, पर वस्तुतः है अवगति ही।

सुख और आनंद की खोज बाहर करते हैं लेकिन वह है अंदर ही। जिसे शांति की तलाश है उसे अपने भीतर निगाह दौड़ानी चाहिए।

निराशा हर स्थिति में हटे

अनाचार अपनाने पर प्रत्यक्ष व्यवस्था में तो अवरोध खड़ा होता ही है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि नियतिक्रम के निरंतर उल्लंघन से प्रकृति का अदृश्य वातावरण भी इन दिनों कम दूषित नहीं हो रहा है। भूकम्प, तूफान, बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, कलह, विद्रोह, विग्रह, अपराध, भयावह रोग, महामारियाँ जैसे त्रास इस तेजी से बढ़ रहे हैं कि इन पर नियंत्रण पा सकना कैसे संभव होगा, यह समझ में नहीं आता। किंकर्त्तव्य–विमूढ़ स्थिति में पहुँचा हुआ हतप्रभ व्यक्ति क्रमशः अधिक निराश ही होता है, विशेषतया तब–जब प्रगति के नाम पर विभिन्न क्षेत्रों में किए गए प्रयास खोखले लगते हों, महत्वपूर्ण सुधार हो सकने की संभावना पर से विश्वास क्रमशः उठता जाता हो।

इतना साहस और पराक्रम तो विरलों में ही होता है, जो आँधी तूफानों के बीच भी अपनी आशा का दीपक जलाए रह सकें। सृजन प्रयोजनों के लिए साथियों का सहयोग न जुट पाते हुए भी सुधार संभावना के लिए एकाकी साहस संजोए रह सकें, उलटे को उलटकर सीधा कर देने की योजना बनाते और कार्य करते हुए अडिग बने रहें, गतिशीलता में कमी न आने दें, ऐसे व्यक्तियों को महामानव–देवदूत कहा जाता है, पर वे यदाकदा ही प्रकट होते हैं। उनकी संख्या भी इतनी कम रहती है कि व्यापक निराशा को हटाने में उन प्रतिभाओं का जितना योगदान मिल सकता था उतना मिल नहीं पाता। आज जनसाधारण का मानस ऐसे ही दलदल में फँसा हुआ है। होना तो यह चाहिए था कि अनौचित्य के स्थान पर औचित्य को प्रतिष्ठित करने के लिए साहसिक पुरुषार्थ जगता, पर लोक मानस में घटियापन भर जाने से उस स्तर का उच्चस्तरीय उत्साह भी तो नहीं उभर रहा है। अवांछनीयता को उलट देने वाले ईसा, बुद्ध, गाँधी, लेनिन जैसी प्रतिभाएँ भी उभर नहीं रही हैं।

इन परिस्थितियों में साधारण जनमानस का निराशाग्रस्त होना स्वाभाविक है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि निराशा भी हल्के

दर्जे की बीमारी नहीं है, वह जहाँ भी जड़ जमाती है वहाँ घुन की तरह मजबूत शहतीर को भी खोखला करती जाती है। निराशा अपने साथ हार जैसी मान्यता संजोए रहती है, खीझ और थकान भी उसके साथ जुड़ती हैं। इतनें दबावों से दबा हुआ आदमी स्वयं तो टूटता ही है अपने साथ वाले दूसरों को भी तोड़ता है। इससे शक्ति का अपहरण होता है, जीवनी शक्ति जबाब दे जाती है, तनाव बढ़ते जाने से उद्विग्नता बनी रहती है और ऐसे रचनात्मक उपाय दीख नहीं पड़ते जिनका आश्रय लेकर तेज बहाव वाली नाव को खे कर पार लगाया जाता है। निराश व्यक्ति जीत की संभावना को नकारने के कारण जीती बाजी हारते हैं। निराशा न किसी गिरे को ऊँचा उठने देती है और न प्रगति की किसी योजना को क्रियान्वित होने देती है।

अस्तु, आवश्यकता है कि निराशा को छोटी बात न मानकर उसके निराकरण का हर क्षेत्र में प्रयत्न करते रहा जाए। इसी में सब की सब प्रकार भलाई है। उत्साह और साहस जीवित बने रहें तभी यह संभव है कि प्रगति प्रयोजनों को कार्यान्वित कर सकना संभव हो सके। उज्ज्वल भविष्य की संरचना को ध्यान में रखते हुए जहाँ भी निराशा का माहौल हो, उसके निराकरण का हर संभव उपाय करना चाहिए। निराकरण तभी संभव है जब उज्ज्वल भविष्य की आशा भरी कल्पनाएँ करते रहने का आधार खड़ा किया जाता रहे।

समय की रीति–नीति में अवांछनीयता जुड़ी होने की बात बहुत हद तक सही है, पर उसका उपचार यही है कि प्रतिरोध में समर्थ चिंतन और पुरुषार्थ के लिए जन–जन की विचार–शक्ति को उत्तेजित किया जाए। उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं पर ध्यान देने और उन्हें समर्थ बनाने के लिए जिस मनोवृत्ति को उत्साह पूर्ण प्रश्रय मिलना चाहिए, उसके लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की जाए। इस संबंध में जन–जन को विश्वास दिलाने के लिए एक समर्थ और व्यापक प्रयास को समुचित विस्तार दिया जाए।

समय–समय पर ऐसी परिस्थितियों में मूर्धन्य जनों ने ऐसे ही प्रयत्न किए हैं और जनमानस पर छाई हुई निराशा का निवारण पाँचजन्य उद्घोष जैसे प्रयासों से संपन्न भी किया है, निराशा को आशा में, उपेक्षा को पुरुषार्थ में बदल देना, नए आधारों को लेकर सृजनात्मक साहस को उत्तेजना देना युग मनीषियों का काम है। इसमें सहयोग विचारशील स्तर के हर व्यक्ति को देना चाहिए।

ऐसे अनेकानेक प्रकरण इतिहास में भरे पड़े हैं। हनुमान के नेतृत्व में रीछ–वानरों का समुदाय समुद्र सेतु बाँधने और लंकादमन की विजयश्री का विश्वास लेकर इस प्रकार उमगा कि उसने दुर्दान्त दानवों को चकित और परास्त कर दिया। गोवर्धन पर्वत उठा सकने का विश्वास मानस की गहराई तक जमा लेने के उपरांत ही ग्वाल–बाल कृष्ण के असंभव लगने वाले प्रयास को परिपूर्ण करने में जुट गए। एक उँगली के इशारे पर ग्वाल–बालों द्वारा लाठियों के सहारे गोवर्धन पर्वत उठाए जाने की कथा आज भी हर किसी को प्रेरणा देती है, उसे ऐतिहासिक विश्वस्त घटना के रूप में ही मान्यता मिल गई है।

फ्रांस की ''जोन ऑफ आर्क'' नामक एक किशोरी ने उस समूचे देश में स्वतंत्रता की एक ऐसी ज्योति प्रज्ज्वलित कराई कि दमित जनता दीवानी होकर उठ खड़ी हुई और पराधीनता की जंजीरें टूट कर रहीं। लेनिन ने रूस के जन–मानस में अपने ढंग का उल्लास भरा प्राण ही फूँक दिया था, जिसमें सफलता के विश्वास का गहरा पुट था, अन्य क्रांतियाँ भी इसी आधार पर सफल होती रही हैं।

बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन में तत्कालीन जनसमुदाय को उज्ज्वल भविष्य का एक मात्र आधार बताया गया। जिनने उसे समझा वे लाखों की संख्या में भिक्षु–भिक्षुणियों के रूप में जीवनदानी बन कर साथ हो लिए और न केवल भारत–एशिया वरन् समूचे संसार में उस समय की चलती हवा को उलट कर सीधा कर देने में सफलता प्राप्त कर गए। गाँधी का सत्याग्रह तो

कल–परसों की घटना है। आंदोलनों के दिनों में एक निश्चित माहौल बन गया था कि 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे लेकर रहेंगे'। इस विश्वास के आधार पर ही असंख्यों ने गोली, जेल और बर्बादी के लिए बढ़–चढ़कर आहुति दी।

अर्जुन का मन हारा हुआ था, वह युद्ध न लड़ने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत कर रहा था। कृष्ण ने अनेक तर्क सुनने के बाद एक राम–वाण का प्रयोग किया, उनने कहा–'कौरवों को तो मैंने पहले ही मार रखा है, वे तो मृतकवत हैं। तू तो निमित्त मात्र बनने की भूमिका निभा और विजयश्री का वरण कर ।' अर्जुन को कृष्ण के वचनों पर पूर्ण विश्वास था, वह सभी उलझनों का परित्याग करके, मोह–मुक्त होकर तत्काल ही युद्ध में प्रवृत्त हो गया।

संप्रदायों के जन्मदाता भी अपने प्रतिपादनों पर अनुयाइयों का सुदृढ़ विश्वास जमाने के उपरांत ही असंख्यों का असाधारण सहयोग एकत्रित करने में समर्थ हुए थे। अध्यात्म मार्ग के मूर्धन्य पुरुष अपने पवित्र चरित्र और कष्टसाध्य तप–साधना की अग्नि–परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही इस स्थिति में पहुँचे थे कि उनके प्रतिपादनों को आप्त–वचन मानते हुए शिरोधार्य किया जा सके।

आज ध्वंस को सृजन में बदलने के लिए अनौचित्य को औचित्य का अंकुश स्वीकार कराने के लिए इसी प्रकार का जन–मानस विनिर्मित करना पड़ेगा, जो भय, आतंक, अशुभ और विनाश की मानसिकता से उबारे और आवश्यक परिवर्तन कर सकने की शक्ति पर सबका विश्वास जमा सके। साथ ही भविष्य की संभावना के संबंध में असमंजस को छोड़कर इस विश्वास को पूरी तरह हृदयंगम कराए कि औचित्य–अनौचित्य पर विजय प्राप्त कर सके। ऐसा समय अब आ गया है। इस विश्वास का आधार तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों की श्रृंखला ढूँढ–ढूँढ कर नियोजित किया जा सकता है। साथ ही यदि उसमें ईश्वर की इच्छा, महाकाल की प्रेरणा एवं सुनिश्चित संभावना बताने वाली उच्च–स्तरीय मान्यता

का पुट लग सके तो इसे सोने के साथ सुगंध मिलने जैसे सुयोग की उपमा दी जा सकेगी।

इस संदर्भ में इक्कीसवीं सदी के अधिक सुखी समुन्नत होने की किंवदंती को सुनिश्चित संभावना का स्थान मिल सके तो इसका परिणाम इस रूप में सामने आकर रहेगा कि जो अवांछनीयताएँ इन दिनों चल रही हैं उनके उलट जाने और सुखद संभावनाओं का पुण्य प्रभात उदय होने की बात लोगों के मन में जमती चली जाएँगी। उसकी परिणति यह होकर ही रहेगी कि लोग अनुचित को छोड़ने और उचित को अपनाने में बुद्धिमत्ता समझें और समय रहते श्रेय–संभावनाओं के भागीदार होने में अपनी अग्रगामी भूमिका निभाते हुए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करने के लिए अधिक तत्परता के साथ कटिबद्ध होने पर अपने को गौरवान्वित अनुभव करने लगें।

जब मनुष्य के भीतर उचित और अनुचित का अंतर्द्वन्द्व उठ खड़ा हो तो समझना चाहिए कि सुख–शांति के दिन नजदीक आ गए।

अपने युग की असाधारण महाक्रांति

विश्व इतिहास में कितनी ही ऐसी महाक्रांतियाँ भी हुई हैं जो चिरकाल तक स्मरण की जाती रहेंगी और लोकमानस को महत्व–पूर्ण तथ्यों से अवगत कराती रहेंगी। छिटपुट उलट–पुलट तो सामयिक स्तर पर हर क्षेत्रीय समस्या के समाधान हेतु होती ही रहती है, पर विश्लेषण और विवेचन उन्हीं का होता है जिनमें व्यापकता के साथ–साथ प्रवाह परिवर्तन भी जुड़ा होता है, ऐसी घटनाएँ ही महाक्रांतियाँ कहलाती हैं।

पौराणिक–काल का समुद्र–मंथन, वृत्रासुर वध, गंगावतरण, हिरण्याक्ष के बंधनों से पृथ्वी का विमोचन, परशुराम द्वारा कुपथगामियों से सत्ता छीनना आदि ऐसी महान घटनाओं को प्रमुख माना जाता है, जिनने कालचक्र के परिवर्तन की भूमिका निभाई। अन्य देशों व संस्कृतियों यथा ग्रीस, रोम, मेसोपोटामिया आदि की लोक कथाओं में भी ऐसे ही मिलते–जुलते अलंकारिक वर्णन हैं। यदि वे सब सही हैं तो मानना होगा कि महाक्रांतियों का सिलसिला चिरपुरातन है।

इतिहास काल में भी कुछ बड़े शक्तिशाली परिवर्तन हुए हैं, जिनमें रामायण प्रसंग, महाभारत आयोजन और बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन प्रमुख हैं। लंका काण्ड के उपरांत रामराज्य के साथ सतयुग की वापसी संभव हुई। महाभारत काल के उपरांत भारत का विशाल भारत, महान भारत बनाने का लक्ष्य पूरा हुआ। बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन से तत्कालीन वह विचारक्रांति संपन्न हुई, जिसकी चिनगारियों ने अगणित क्षेत्रों के अगणित प्रसंगों को ऊर्जा और आभा से भर दिया, वह दावानल अनेक मंचों, धर्म संप्रदायों, संतों, समाज सुधारकों और शहीदों के रूप में पिछली शताब्दी तक अपनी परंपरा को विभिन्न रूपों में कायम रखे रहा। प्रजातंत्र और साम्यवाद की सशक्त नई विचारणा इस प्रकार उभरी, जिसने लगभग समूची विश्व वसुधा को आंदोलित करके रख दिया। पिछली क्रांतियों के संदर्भ में इतने ही संकेत पर्याप्त होने चाहिए

जिनसे सिद्ध होता है कि मनीषा जब भी आदर्शवादी ऊर्जा से अनुप्राणित होती है तो अनेक सहचरों को खींच बुलाती है और वह कार्य कर दिखाती है जिसे आमतौर से मानवी कहना गले न उतरने पर 'दैवी अनुग्रह' की संज्ञा दी जाती है। पुरातन–कालों के ऐसे झंझावातों को अवतार की संज्ञा देकर संतोष कर लिया जाता है। असंभव को संभव कर दिखाने वाले महापराक्रमों को मनीषा की प्रखरता भी जनसहयोग के सहारे संपन्न कर सकती है, इसे सामान्य स्तर का जन समुदाय स्वीकार भी तो नहीं करता।

पिछले महान परिवर्तनों को युगांतरीय या युग परिवर्तनकारी भी कहा जाता रहा है। इन दिनों ऐसे ही प्रचण्ड प्रवाह के अवतरण का समय है, जिसे पिछले समस्त परिवर्तनों की संयुक्त शक्ति का एकात्म समीकरण कहा जा सकता है। पिछले परिवर्तनों में कितना समय लगता रहा है ? इसके संबंध में सही विवरण तो उपलब्ध नहीं, पर वर्तमान महाक्रांति का स्वरूप समग्र रूप से परिलक्षित होने में प्रायः सौ वर्ष का समय महत्वपूर्ण होगा। यों उसका तारतम्य अब से काफी पहले से भी चल रहा है और पूरी तरह चरितार्थ होने के बाद भी कुछ समय चलता रहेगा।

अपने समय का महापरिवर्तन "युगांतर" के नाम से जाना जा सकता है। युग परिवर्तन की प्रस्तुत प्रक्रिया का एक ज्वलंत पक्ष तब देखने में आया जब प्रायः दो हजार वर्षों से चले आ रहे आक्रमणों–अनाचारों से छुटकारा मिला। शक, हूण, कोल, किरात यवन लगातार इस देश पर आक्रमण करते रहे हैं। यहाँ का वैभव बुरी तरह लुटता रहा है। विपन्नता ने इतना पराक्रम भी शेष नहीं रहने दिया था कि आक्रांताओं को उल्टे पैरों लौटाया जा सके, फिर भी महाक्रांति ने अपना स्वरूप प्रकट किया। दो विश्व युद्धों ने अहंकारियों की कमर तोड़ दी और दिखा दिया कि विनाश पर उतारू होने वाली कोई भी शक्ति नफे में नहीं रह सकती। भारत में लंबे समय से चली आ रही राजनैतिक पराधीनता का जुआ देखते–देखते उतार फेंका गया। दावानल इतने तक ही रुका नहीं,

अफ्रीका महाद्वीप के अधिकांश देश–उपनिवेश साधारण से प्रयत्नों के सहारे स्वतंत्र हो गए। इसके अतिरिक्त छोटे–छोटे द्वीपों तक ने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, इस प्रकार उपनिवेशवाद समाप्त हो गया।

इसी बीच सामाजिक क्रांति किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रही वरन् उसने समस्त विश्व को प्रभावित किया। दास–दासियों की लूट–खसोट और खरीद–फरोख्त वहाँ बंद हुई, इतने पुराने प्रचलन को इतनी तेजी से उखाड़ना संभव हुआ मानों किसी बड़े तूफान ने सब कुछ उलट–पलट कर रख दिया हो ! राजतंत्र का संसार भर में बोलवाला था, सामंतों की सर्वत्र तूती बोलती थी, अमीर, उमराव और जमींदार ही छत्रप बने हुए थे। वे न जाने किस हवा के झोंके के साथ टूटी पतंग की तरह उड़ गए। स्त्री और शूद्र के रूप में तीन चौथाई जनता किसी प्रकार अपने मालिकों के अनुग्रह पर निर्भर रहकर जीवनयापन भर के साधन बिना सम्मान के स्वीकार कर लेने पर भी कामचलाऊ मात्रा में उपलब्ध कर पाती थी। वह स्थिति अब नहीं रही, ''नर और नारी एक समान'', ''जाति–वंश सब एक समान'' का निर्धारण प्रायः विश्व के अधिकांश भागों में सिद्धांततः स्वीकार कर लिया गया है। व्यवहार में उतरने में कुछ समय तो लग रहा है, कठिनाई भी पड़ रही है पर देर–सबेर में यह समस्या भी सुलझ जाएगी, यह सभी परिवर्तन इसी बीसवीं सदी में हुए हैं जबकि इन्हें जड़ें जमाने में हजारों वर्ष लग गए थे।

बुझता हुआ दीपक पूरी लौ उठाता है। रात्रि के अंतिम चरण में अंधेरा सबसे अधिक गहरा होता है। हारता जुआरी दूना दुस्साहस दिखाता है। 'मरता सो क्या न करता' वाली उक्ति ऐसे ही समय पर चरितार्थ होती है। वैसा ही इन दिनों भी हो रहा है। नीति और अनीति के बीच इन दिनों घमासान युद्ध हो रहा है। कुहराम और धकापेल का ऐसा माहौल है, जिसमें सूझ नहीं पड़ता कि आखिर हो क्या रहा है ? इस आँख मिचौनी में धूप–छाँव में किसे

पता चल रहा है कि हो क्या रहा है ? कौन जीता और हार कौन रहा है ? इतने पर भी जो अदृश्य को देख सकते हैं, वे सुनिश्चित आधारों के सहारे विश्वास करते हैं कि सृजन ही जीतेगा। विजय सत्य की ही होनी है। उज्ज्वल भविष्य का दिनमान उदय होकर ही रहना है और आँखों को धोखे में डालने वाला तम सुनिश्चित रूप से मिटना है।

महाक्रांति के वर्तमान दौर में क्या हो रहा है ? क्या होने जा रहा है ? क्या बन रहा है ? क्या बिगड़ रहा है ? इसका ठीक तरह सही स्वरूप देख पाना सर्वसाधारण के लिए संभव नहीं। दो पहलवान जब अखाड़े में लड़ते हैं, तो दर्शकों को ठीक तरह पता नहीं चल पाता कि कौन हार रहा है और कौन जीतने जा रहा है, पर यह असमंजस अधिक समय नहीं रहता। वास्तविकता सामने आकर ही रहती है। वर्तमान में बिगाड़ होता अधिक दीखता है और सुधार की गति धीमी प्रतीत होती है, फिर भी प्रवाह की गति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हम पीछे नहीं हट रहे, आगे ही बढ़ रहे हैं। अनौचित्य का समापन और औचित्य का अभिवर्धन ही निष्कर्ष का सार संक्षेप है।

भविष्य का एकदम सुनिश्चित निर्धारण तो नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह उसे बना भी सकता है बिगाड़ भी। बदलती हुई परिस्थितियाँ भी पासा पलट सकती हैं। इतने पर भी अनुमान और आंकलन यदि सही हो तो संभावना की पूर्व जानकारी का अधिकतर पता चल जाता है। इसी आधार पर संसार की अनेक योजनाएँ बनती और गति–विधियाँ चलती हैं। यदि भावी अनुमान के संबंध में स्थिति सर्वथा अनिश्चित रहे, तो किसी महत्वपूर्ण विषय पर कुछ सोच सकना संभव न हो सकेगा ।

यह महाक्रांति की बेला है, युग परिवर्तन की भी। अशुभ की दिशा से शुभ की ओर प्रयाण चल रहा है, प्रवाह बह रहा है। तूफान की दिशा और गति को देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि

वस्तुओं को किस दिशा में धकेला और बढ़ाया जाता है। नदी के प्रवाह में गिरे हुए झंखाड़ बहाव की दिशा में ही दौड़ते चले जाते हैं। तूफानों की जो दिशा होती है उसी में तिनके पत्ते और धूलिकण उड़ते चले जाते हैं। महाक्रांति सदा सृजन और संतुलन के निमित्त उभरती हैं। पतन और पराभव की विडंबनाएँ तो कुसंस्कारी वातावरण आए दिन रचता रहता है। पेड़ पर लगा हुआ फल नीचे की ओर गिरता है। पानी भी ढलान की ओर बहकर निचाई की ओर चलता जाता है। किंतु असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए जब महाक्रांतियाँ उभरती हैं तो उसका प्रभाव परिणाम ऊर्ध्वगमन, उत्कर्ष, अभ्युदय के रूप में ही होता है। इसलिए उसे ईश्वरेच्छा या भगवान का अवतार भी कहा जाता है। उस उभार को देखते हुए, यह विश्वास किया जा सकता है कि भविष्य उज्ज्वल है। हम सब शांति और प्रगति के लक्ष्य की दिशा में चल रहे हैं और उसे प्राप्त करके भी रहेंगे।

कार्य को वचन के अनुसार बनाओ और वचन को कार्य के अनुसार। दोनों में फर्क न पड़े।

चौथी शक्ति का अभिनव उद्भव

तीन शक्तियों की प्रभुता और महत्ता सर्वविदित है (१) बुद्धि बल, जिसमें विज्ञान, साहित्य और कला भी सम्मिलित हैं, (२) शासन सत्ता—इसके अंतर्गत हैं, व्यवस्था, सुरक्षा और तंत्—संबंधी साधन एवं अधिकारी। (३) धन शक्ति—जिसमें उद्योग व्यवसाय, निजी संग्रह एवं बैंक आदि को सम्मिलित किया जाता है। देखा जाता है कि इन्हीं तीनों के सहारे छोटे—बड़े, भले—बुरे सभी काम संपन्न होते हैं। प्रगति एवं अवगति का श्रेय इन्हीं तीन शक्तियों को मिलता है। सरस्वती, लक्ष्मी काली के रूप में इन्हीं की पूजा भी होती है। जन साधारण की इच्छा—अभिलाषा इन्हीं को प्राप्त करने में आतुर एवं संलग्न रहती है। इनमें से जिनके पास जितना अंश हस्तगत हो जाता है, वह उतना ही गौरवान्वित—यशस्वी अनुभव करते हैं। बड़प्पन की यही तीन कसौटियाँ इन दिनों बनी हुई हैं। इनके सहारे वह सब कुछ खरीदा जाता है, जो इच्छानुसार सुविधा साधन अर्जित करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

नवयुग के अवतरण में अब चौथी उस शक्ति का उदय होगा, जो अभी भी किसी प्रकार कहीं—कहीं जीवित तो हैं, पर उसका वर्चस्व कहीं—कहीं, कभी—कभी ही दीख पड़ता है। इसी की दुर्बलता अथवा न्यूनता के कारण अनेकानेक विकृतियाँ उग पड़ी हैं और उनने जल कुम्भी की तरह जलाशयों को अपने प्रभाव से आच्छादित करके वातावरण को अवांछनीयताओं से घेर लिया है।

इस चौथी शक्ति का नाम है, ''प्रखर प्रतिभा''। सामान्य प्रतिभा तो बुद्धिमानों, क्रिया कुशलों, व्यवस्थापकों और पराक्रम परायणों में भी देखी जाती है। इनके सहारे वे प्रचुर संपदा कमाते, यशस्वी बनते और अनुचरों से घिरे रहते हैं। आतंक उत्पन्न करना भी इन्हीं के सहारे संभव होता है। छद्म अपराधों की एक बड़ी श्रृंखला भी चलती है। इस सामान्य प्रतिभा से संपन्न अनेक व्यक्ति देखे जाते हैं और उसके बल पर बड़प्पन का सरंजाम जुटाते हैं। तत्काल उसे हुंडी की तरह भुना लिया जाता है। अच्छे वेतन पर अधिकारी स्तर

का लाभदायक काम उन्हें मिल जाता है, किंतु प्रखर प्रतिभा की बात इससे सर्वथा भिन्न है। प्रखरता से यहाँ तात्पर्य आदर्शवादी उत्कृष्टता से लिया जाना चाहिए। सज्जन और समर्पित संत इसी स्तर के होते हैं। कर्तव्य क्षेत्र में वे सैनिकों जैसा अनुशासन पालन करते हैं। देव मानव इन्हीं को कहते हैं। ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी, वर्चस्वी, महामानव, युग पुरुष आदि नामों से भी इस स्तर के लोगों का स्मरण किया जाता है।

इनमें विशेषता उच्चस्तरीय भाव संवेदनाओं की होती है। श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा जैसे तत्व उन्हीं में देखे पाए जाते हैं। सामान्य प्रतिभावान् मात्र धन, यश या बड़प्पन का अपने निज के हेतु अर्जन करते रहते हैं। जिसे जितनी सफलता मिल जाती है, वह अपने को उतना ही बड़ा मानता है। लोग भी उसी से प्रभावित होते हैं। कुछ प्राप्ति की इच्छा से अनेक चाटुकार उनके पीछे फिरते हैं। अप्रसन्न होने पर वे अहित भी कर सकते हैं, इसलिए भी कितने ही उनका दबाव मानते हैं और इच्छा न होने पर भी सहयोग करते हैं। यह सामान्य प्रतिभा का विवेचन है।

''प्रखर प्रतिभा'' संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊँची उठी होती हैं। उसे मानवी गरिमा का ध्यान रहता है। उसमें आदर्शों के प्रति अनन्य निष्ठा का समावेश रहता है। लोक मंगल और सत्प्रवृत्ति संवर्धन में उसे गहरी रुचि रहती है।

प्रखर प्रतिभा का दिव्य अनुदान एक प्रकार से दैवी अनुग्रह गिना जाता है। जबकि सामान्य लोगों को लोभ–मोह के बंधनों से क्षण भर के लिए भी छुटकारा नहीं मिलता, तब प्रखर प्रतिभा संपन्न लोग जन–समस्याओं पर ही विचार करते और उनके समाधान की योजना बनाते रहते हैं। भावनाएँ उभरने पर ऐसे मनुष्य बड़े से बड़ा त्याग और पुरुषार्थ कर दिखाने में तत्पर हो जाते हैं। ऐसे लोग असफल रहने पर शहीदों में गिने और देवताओं की तरह पूजे जाते हैं। यदि वे सफल होते हैं तो इतिहास बदल देते हैं। प्रवाहों को उलटना इन्हीं का काम होता।

आकाश बहुत बड़ा है, पर उसमें सीमित संख्या में ही तेजस्वी तारे चमकते दिखाई पड़ते हैं। उसी प्रकार जन समुदाय को पेट प्रजनन के अतिरिक्त और कुछ सोचते–करते नहीं बन पड़ता, किंतु जिन पर दैवी अनुकम्पा की तरह प्रखर प्रतिभा अवतरित होती है, उसका क्रिया–कलाप ऐसा बन पड़ता है, जिसका चिरकाल तक असंख्यों द्वारा अनुकरण–अभिनंदन होता रहे।

स्वाध्याय, सत्संग, प्रेरणा परामर्श आदि द्वारा भी सन्मार्ग पर चलने का मार्गदर्शन मिलता है, पर वह सब गले उन्हीं के उतरता है, जिनके अंदर भाव–संवेदनाएँ पहले से ही जीवित हैं। उनके लिए थोड़ी–सी प्रेरणा भी क्रांतिकारी परिवर्तन कर देती है। सीप में जल की एक बूँद ही मोती उत्पन्न कर देती है, पर रेत में गिरने पर वह अपना अस्तित्व ही गँवा बैठती है। यही बात आदर्शवादी परमार्थों के संबंध में भी है। कई बार तो उपदेशकों तक की करनी–कथनी में जमीन–आसमान जैसा अंतर देखा–पाया जाता है। भावनाओं की प्रखरता रहने पर व्यक्ति व्यस्त कार्यों में से भी समय निकाल लेता है मनोबल बनाए रखता है और उसमें अपनी सदाशयता का खाद–पानी देकर बढ़ाता रहता है। इस प्रकार अपने संपर्क में आने वाले को भी अपने परामर्शों के साथ गहन भाव–संवेदनाओं का समन्वय करके इतना प्रभावित कर लेता है कि वे इस दिशा में कुछ भी कर गुजरने में झिझकें नहीं।

मध्यकाल में राजपूतों के हर परिवार में से एक व्यक्ति सेना में भर्ती हुआ करता था। ब्राह्मण परिवारों में से एक ब्रह्मचारी–परिव्राजक, समाज को दान दे दिया जाया करता था। सिख धर्म में भी घर के एक व्यक्ति को समाज सेवी बनाने की परंपरा रही है। इसी के लिए उन्हें अमृत चखाया जाता था, अर्थात् दीक्षा दी जाती थी। बौद्ध धर्म विस्तार के दिनों में उसी आधार पर लाखों भिक्षु–भिक्षुणियाँ कार्य क्षेत्र में उतरे थे। आज भी समय की माँग ऐसी है, जिसमें चिंतन, चरित्र और व्यवहार में असाधारण परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए भावनाशील लोक सेवियों की, प्रखर

प्रतिभाओं की जितनी बड़ी संख्या उपलब्ध हो सकेगी, उतनी ही लक्ष्य पूर्ति में सरलता और गतिशीलता रहेगी। पूरा–आधा या चौथाई जितना ही जिनसे समयदान–अंशदान बन पड़े, समझना चाहिए कि नव सृजन की पुण्य प्रक्रिया में संलग्न होने का उसे उतना ही अधिक श्रेय उपलब्ध हुआ।

सूक्ष्म जगत में भी कई बार समय–समय पर ज्वार–भाटे जैसे उतार–चढ़ाव आया करते हैं। कभी स्वार्थी, लालची, अपराधी, कुकर्मी समाज में बढ़ जाते हैं। वे स्वयं तो कुछ लाभ भी उठा लेते हैं, पर प्रभाव क्षेत्र के अन्य अनेक का सर्वनाश करते रहते हैं। इसे आसुरी प्रवाह प्रचलन कहा जा सकता है, पर जब प्रवाह बदलता है, तो उच्च आत्माओं की भी कमी नहीं रहती। एक जैसे विचार ही असंख्यों के मन में उठते हैं और उन सब की मिली–जुली शक्ति से सृजन स्तर के कार्य इतने अधिक और इतने सफल होने लगते हैं जिन्हें देखकर लोगों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ जाता है। उसे दैवी प्रेरणा कहने में भी कुछ अत्युक्ति नहीं है।

इक्कीसवीं सदी में नई दुनियाँ बनाने जैसा कठिन कार्य किया जाना है। इसके लिए प्रचुर परिमाण में प्रखर प्रतिभा का उफान तूफान आना है। अनेक व्यक्ति उस संदर्भ में कार्य करेंगे। आँधी–तूफान आने पर पत्ते, तिनके और धूलिकण भी आकाश तक जा पहुँचते हैं। दैवी प्रेरणा का अदृश्य प्रवाह इन्हीं दिनों ऐसा आएगा जिसमें सृजन सैनिकों की विशालकाय सेना खड़ी दिखाई देगी और उस प्रकार के चमत्कार करेगी जैसे कि अणुबम गिराने के बाद खंडहर बने जापान को वहाँ के निवासियों ने अन्य देशों की तुलना में पहले से भी कहीं बेहतर बना कर किया है। रूस, जर्मनी आदि ने भी कुछ ही दशाब्दियों में क्या से क्या चमत्कार कर दिखाए। उन्हें अद्भुत ही कहा जा सकता है और इतिहास में अनुपम भी।

दुर्बुद्धि ने पिछली एक शताब्दी में कितना कहर ढाया है, यह किसी से छिपा नहीं है। दो विश्व युद्ध इसी शताब्दी में हुए। प्रदूषण इतना बढ़ा है, जितना कि विगत लाखों वर्षों में बढ़ नहीं पाया था।

वन विस्मार हुए। रेगिस्तान बढ़े। अपराधों की बढ़ोत्तरी ने कीर्तिमान स्थापित किया। मद्य, मांस और व्यभिचार ने पिछले रिकार्ड तोड़ दिए। जनसंख्या की बढ़ोत्तरी भी अद्‌भुत क्रम से हुई। जन साधारण का व्यक्तिगत आचरण लगभग भ्रष्टाचार स्तर पर जा पहुँचा और भी न जाने ऐसा क्या–क्या हुआ, जिसकी चर्चा सुनकर यही कहना पड़ता है कि मनुष्य की तथाकथित वैज्ञानिक, बौद्धिक और आर्थिक प्रगति ने समस्याएँ, विपत्तियाँ और विभीषिकाएँ ही खड़ी कीं। आश्चर्य होता है कि प्रायः एक शताब्दी में ही इतना अनर्थ किस प्रकार हुआ और द्रुतगति से क्रियाशील किया जाना संभव हुआ।

अब रात्रि के बाद दिनमान का उदय होने जा रहा है। दूसरे स्तर का प्रवाह चलेगा। मनुष्यों में से असंख्यों में भाव संवेदनाओं का उभार आएगा और वे सभी सृजन की, सेवा की, उत्थान की, आदर्श की बात सोचेंगे। इसमें लोगों का एक बड़ा समुदाय उगता उभरता दृष्टिगोचर होगा। गर्मी के दिनों में घास का एक तिनका भी कहीं नहीं दीखता, पर वर्षा के आते ही सर्वत्र हरियाली छा जाती है। नए युग का दैवी प्रवाह अदृश्य वातावरण में अपनी ऊर्जा का विस्तार करेगा। फलस्वरूप जिनमें भाव संवेदनाओं के तत्व जीवित बचे होंगे, वे सभी अपनी सामर्थ्य का एक महत्वपूर्ण भाग नव–सृजन के लिए नियोजित किए हुए दृष्टिगोचर होंगे। व्यस्तता और अभावग्रस्तता की आड़ लेकर कोई भी न आत्म प्रवंचना कर सकेगा और न सुनने वालों में से किसी को इस बात का विश्वास दिला सकेगा कि बात वस्तुतः ऐसी भी हो सकती है, जैसी कि बहकावे के रूप में समझी या कही जा रही है।

इक्कीसवीं सदी निकट है। तब तक इस अवधि में प्रखर प्रज्ञा के अनेक छोटे–बड़े उद्यान रोपे उगाए, बढ़ाए और इस स्तर तक पहुँचाए जा सकेंगे, जिन्हें नंदन वनों के समतुल्य कहा जा सके, जिन्हें कल्पवृक्ष उद्यानों की उपमा दी जा सके।

श्रेष्ठ मनुष्यों का बाहुल्य ही सतयुग है। उसी को ''स्वर्ग'' कहते हैं। नरक और कुछ नहीं दुर्बुद्धि का बाहुल्य और उसी का व्यापक प्रचलन है। नरक जैसी परिस्थितियाँ उसी में दृष्टिगोचर होती हैं। पतन और पराभव के अनेक अनाचार उसी के कारण उत्पन्न होते रहे हैं। समय परिवर्तन के साथ सदाशयता बढ़ेगी। नव सृजन की उमंग जन-जन के मन में उठेगी और प्रखर प्रतिभा का दिव्य आलोक सर्वत्र अपना चमत्कार उत्पन्न करता दिखाई देगा। यह चौथी-प्रतिभा की शक्ति नवयुग की अधिष्ठात्री कही जाएगी।

जीवन का एक भी क्षण सोने की करोड़ों मोहरों से नहीं खरीदा जा सकता, तो फिर ऐसे अमूल्य क्षणों को व्यर्थ खो देने से अधिक और क्या मूर्खता होगी ?

चार चरण वाला युग धर्म

इक्कीसवीं सदी में सर्वसाधारण के जीवन में चार अनुबंधों का सघन समावेश होगा। (१) समझदारी (२) ईमानदारी (३) जिम्मेदारी (४) बहादुरी। इन चारों आदर्शों को चार वेदों का सार तत्व समझा जा सकता है। धर्म के यही चार चरण रहेंगे। अभिनव समाज और परिष्कृत वातावरण की संरचना इन्हीं आदर्शों को अपनाते हुए की जाएगी। नवयुग का नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र भी इन्हीं चार तथ्यों पर आधारित होगा। इन्हीं की अवहेलना से अनेक दुर्भावनाएँ और दुष्प्रवृत्तियाँ पनपी हैं। उनका निराकरण समाधान भी इन्हीं चारों के पुनः प्रतिष्ठापन से संभव होगा।

समझदारी–तुरंत का लाभ देखकर उस पर बेहिसाब टूट पड़ना, उसके साथ जुड़े हुए भविष्य के दुष्परिणामों को न समझ पाना ही नासमझी है। यह नासमझी ही अनेक समस्याओं, कठिनाइयों, विपत्तियों और विभीषिकाओं का मूलभूत कारण है। यदि अगले दिनों अपने कृत्यों के परिणामों को ध्यान में रखा जा सके, तो किसी को भी किसी प्रकार की कठिनाइयों का सामना न करना पड़े और ऐसा कुछ न बन पड़े, जिससे भविष्य के अंधकार मय बनने का अवसर आए।

चिड़ियाँ ढेरों दाना सहज ही पा लेने के लोभ में फँसती हैं। मछलियाँ भी आटे के लालच से जाल में फँसती और प्राण गँवाती हैं। चाशनी के कढ़ाव में बिना आगा–पीछा सोचे टूट पड़ने वाली मक्खियों की भी, पंख फँस जाने पर ऐसी ही दुर्गति होती है।

असंयमी, अनाचारी, दुर्व्यसनी तत्काल का लाभ देखते हैं और यह भूल जाते हैं कि इस उतावली के कारण अगले ही दिनों किन दुष्परिणामों का सामना करना पड़ेगा। जिनकी आँखों में दृष्टि दोष हो जाता है वे मात्र समीपवर्ती वस्तु ही देखते हैं। दूर की वस्तुएँ उन्हें दिखाई ही नहीं पड़तीं। इसलिए बार–बार ठोकरें खाते, टकराते और गड्ढों में गिरते रहते हैं।

इन दिनों व्यक्ति और समाज के सामने अगणित समस्याएँ हैं।

इन सबका एक ही कारण है, नासमझी। असंयमी, प्रमादी सजधज को प्रधानता देने वाले अहंकारी, मात्र उद्धत कृत्यों में ही लाभ देखते हैं और यह भूल जाते हैं कि प्रामाणिकता गँवा बैठने असमर्थ रह जाने और कुटेवों के अभ्यस्त बन जाने पर किस प्रकार अपना व्यक्तित्व ही हेय बन जाता है। अनगढ़ स्थिति में पड़े रहकर ऐसी हानि उठाते हैं जिसकी क्षतिपूर्ति भी न हो सके।

इन दिनों नासमझी ही महामारी बनकर हर किसी के सिर पर छाई हुई है। भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण इसी कारण बन पड़े हैं। मनःस्थिति परिस्थितियों को जन्म देती हैं और उसके अवांछनीय होने पर अपने लिए, संबंधित अन्यायों के लिए अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न करती है। समझदारों की नासमझी ही अगणित विपत्तियों का कारण बनी हुई है। यह सच है कि मनुष्य भटका हुआ देवता है। वही अपने भाग्य का निर्माता भी है। प्रवाह प्रचलन को सही दिशा देने की उसमें परिपूर्ण सामर्थ्य है। दिशा–बोध ही समस्त भटकावों का निराकरण है। इन दिनों सभी विचारशीलों का दृष्टिकोण एवं पुरुषार्थ एक केन्द्र पर केन्द्रित होना चाहिए। आदर्शों के प्रति श्रद्धा तथा तर्क, तथ्य और प्रमाण के पक्षधर विवेक का समन्वय यदि बन पड़े, तो समझना चाहिए कि भँवर से नाव को पार कर लेने में और कोई बड़ा व्यवधान शेष नहीं रह गया।

ईमानदारी–दूसरों से अपने लिए जिस प्रकार के व्यवहार की आशा करते हैं वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करना, यही 'ईमानदारी' की समग्र परिभाषा है। हम दूसरों से स्नेह की, सहयोग की, सद्भाव की, सद्व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। ठीक वैसा ही दूसरों के साथ अपना व्यवहार बनता रहे। ईमानदारी के समस्त उदाहरण इसी एक तथ्य को चरितार्थ करने में सन्निहित हो जाते हैं। अपने को जो बुरा लगता है उसी का आचरण दूसरे के साथ किया जाए तो इसे बेईमानी कहना होगा।

हम नहीं चाहते कि कोई हमें ठगे, पीड़ा पहुँचाए, निष्ठुरता बरते, असभ्यता बरते, फिर ठीक वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ

हम अपनी ओर से क्यों करें ? यदि दूसरों के स्थान पर होते तो हम किस प्रकार के बर्ताव की आशा करते ? ठीक इसी कसौटी पर, हर प्रसंग में, हर क्षेत्र में कसकर यह जानना चाहिए कि अपनी ईमानदारी खरी है या खोटी ?

ईमानदारी ही धर्म है। उसी को भक्ति, ज्ञान, अध्यात्म, साधना तपश्चर्या का सार तत्व समझना चाहिए। इसके लिए किसी बड़े ग्रंथ को पढ़ने या संत विद्वान के पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में सबसे अधिक सुयोग्य न्यायाधीश अपनी आत्मा ही हो सकती है। अपने से बार–बार पूछते रहना चाहिए। अपने को जाँचना चाहिए कि न्याय का सिद्धांत कितनी मात्रा में अपनाया जा रहा है। जितना अपने को खरा पाया जाए समझना चाहिए कि उतने ही अंशों में हम धर्मात्मा हैं।

दूसरे लोग बेईमानी बरतते हों, तो उस कुचक्र से अपने को बचाना चाहिए। अनीति पर उतारू लोगों को समझाने से लेकर प्रताड़ित करने तक की नीति अपनानी चाहिए, पर बदले में ऐसा न किया जाए कि स्वयं ही दूसरे गिरे हुए व्यक्ति के स्तर पर नीचे उतर आएँ।

जिम्मेदारी–मनुष्य स्वतंत्र, स्वच्छंद, स्वेच्छाचारी घूमता है, पर वस्तुतः वह अनेक उत्तरदायित्वों से बँधा है। अनेक अनुशासन उस पर लागू होते हैं। शरीर को स्वच्छ रखने के लिए आहार–विहार की मर्यादाओं का परिपालन, मन को संतुलित और प्रमुदित बनाए रखने के लिए सद्भावनाओं का अवधारण, आर्थिक कठिनाई न बढ़ने देने के लिए और नागरिक स्तर का निर्वाह, परिवार के सदस्यों को सुयोग्य, स्वावलंबी, सुसंस्कृत बनाने के लिए अनवरत प्रयास जैसे अनुबंधों का ठीक तरह से पालन करने पर ही कोई सुखी समुन्नत रह सकता है और संपर्क क्षेत्र को प्रसन्न बना सकने का श्रेय पा सकता है। जो इन जिम्मेदारियों की उपेक्षा करते हैं, वे अनाचरण में फँसते और अनेक प्रकार के त्रास सहते हैं।

निजी जीवन से एक कदम आगे बढ़कर, सामाजिक क्षेत्र में उच्चस्तरीय भूमिका निभाने का महत्वपूर्ण कदम बढ़ाना मानवी गरिमा की परिधि में आता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मान्यता आदर्शवादिता में गिनी जाती है। दुःखों को बँटा लेना और सुखों को बाँट देना, हिल–मिलकर रहना और सुख–सुविधाओं का मिल बाँट कर उपयोग करना ऐसी रीति–नीतियाँ हैं, जिन्हें अपनाने वाला स्वयं श्रेयाधिकारी बनता है और अनेक को अनुकरण के लिए प्रेरित करता है।

स्रष्टा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र–युवराज के रूप में मनुष्य को सृजा और सृष्टि को सुव्यवस्थित, समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा। उसे पूरा करने में निरत रहकर ही वह जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी आधार पर मनुष्य देव मानव स्तर को भी प्राप्त कर सकता है। इतने पर भी यदि लोभ, मोह और अहंकार के कुचक्र में फँसकर सुर दुर्लभ सुयोग को व्यर्थ ही गँवा दिया, तो भयंकर भूल होगी। ऐसी गैर जिम्मेदारी इन दिनों तो दिखाई ही नहीं जानी चाहिए।

बहादुरी–कोई समय था जब किसी को हरा या गिरा देने को बहादुरी कहा जाता था। बलिष्ठ, दुर्बलता पर हावी होकर अपने को योग्य और शूरवीर सिद्ध किया करते थे, पर अब वह रीति मानवी गरिमा में से बहिष्कृत की जा रही है। व्याघ्र, हिरन या खरगोशों को दबोचते रहते हैं। बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती रहती हैं। आतताई दुर्बलों का दमन–शोषण करते रहते हैं। बाज जिंदगी भर पक्षियों के अण्डे–बच्चे खाता रहता है, उसे कोई शूरवीर कहाँ कहता है ? डाकू, हत्यारे, कसाई नित्य मार–धाड़ मचाए रहते हैं और कितनों का प्राण हरण करते हैं, उन्हें बहादुर होने का श्रेय कहाँ, कब, किसने दिया है ?

बहादुरी का प्राचीनतम और अर्वाचीन अर्थ एक ही है कि ऐसे पराक्रम कर गुजरना, जिससे अपनी महानता उभरती है, और समय, समाज, संस्कृति की छवि निखरती है। ऐसा पुरुषार्थ करने

का ठीक यही समय है। सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन की जैसी आवश्यकता इन दिनों है, उतनी इससे पहले कभी नहीं रही। इस दुहरे मोर्चे पर जो जितना जुझारू हो सके, समझना चाहिए कि उसने युग धर्म समझा और समय की पुकार सुनकर अगली पंक्ति में बढ़ आया।

दुष्कर्मों में निरत असंख्य लोग देखे जाते हैं। अन्ध विश्वासों और अनाचारों की कहीं कमी नहीं। पानी ढलाव की ओर बढ़ता और ढेला ऊपर से नीचे की ओर गिरता है। निकृष्टता अपनाने में हर किसी के पूर्व संचित कुसंस्कार कुमार्ग की ओर धकेलते हैं। प्रवाह प्रचलन भी ऐसा है जिसमें दुष्प्रवृत्तियाँ ही भरी पड़ी हैं। बुरे कुसंग का, अवांछनीय वातावरण का दुष्प्रभाव भी कम शक्तिशाली नहीं होता। इन सबका समन्वय मिलकर साधारण स्तर के लोगों को पेट प्रजनन तक सीमित रहने और हेय जीवन जीने के लिए ही बाधित करता रहता है। जो इन सब का सामना करते हुए अपने आप को उच्चस्तरीय आदर्शवादिता अपनाने के लिए तत्पर हो सके, समझना चाहिए कि वह सच्चे अर्थों में शूरवीर हैं।

दुष्टजन गिरोह बना लेते हैं। आपस में सहयोग भी करते हैं। किंतु तथाकथित सज्जन मात्र अपने काम से काम रखते हैं। लोकहित के प्रयोजन के लिए संगठित और कटिबद्ध होने से कतराते हैं। उनकी यही एक कमजोरी अन्य सभी गुणों और सामर्थ्यों को बेकार कर देती है। मन्यु की कमी ही इसका मूल कारण है । यह बहादुरी का ही काम है कि जो बुद्ध के धर्म चक्र प्रवर्तन और गाँधी के सत्याग्रह आंदोलनों में सम्मिलित होने वालों की तरह सज्जनों का समुदाय जमा कर लेते हैं । बहादुरी हनुमान, अंगद जैसों की ही सराही जाती है । जो महामानव इसी स्तर के होते हैं । वे अपनी उत्कृष्टता और परमार्थ परायणता के आधार पर ऐसे कृत्य कर दिखाते हैं मानो उन्हें किसी दैवी शक्ति के सहारे उतने बड़े चमत्कार कर दिखाने का अवसर मिला है ।

धर्म–दर्शन, अध्यात्म–तत्व दर्शन के अनेक नियम निर्धारित

हैं । उनके उतार–चढ़ाव और मतभेद ही आमतौर से लोगों के मानस पर छाए रहते हैं, पर अगले दिनों यह नियम पूरी तरह उलट जाएगा । समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी के चार चरणों की परिधि में उत्कृष्टता के समस्त सिद्धांतों का समावेश हो जाएगा । इतने छोटे धर्मशास्त्र से भी युग समस्याओं का समाधान हो सकना संभव हो जाएगा ।

अगले दिनों प्रत्येक विचारशील को आत्म निरीक्षण की साधना में किसी न किसी रूप में सम्मिलित होना पड़ेगा । देखना, जाँचना होगा कि उपरोक्त चारों मान्यताओं ने अंतःकरण में कितनी गहराई तक प्रवेश किया और उन्हें कार्य रूप में परिणत करने के लिए कितना प्रयास करना पड़ा ? जो कमी रह रही होगी, उसे पूरा करने के लिए हर भावनाशील अगले दिनों निरंतर प्रयत्न किया करेगा ।

अपना सुधार करो तो संपर्क में आने वाले दूसरे भी सुधर जाएँगे, अपने को जो नहीं सुधार सका उसको धर्मोपदेश देने का अधिकार कहाँ होता है ?

अगली शताब्दी का अधिष्ठाता—सूर्य

इस ब्रह्मांड में इस स्तर का और कोई ग्रह नहीं खोजा जा सका, जैसा कि सुंदर, सुव्यवस्थित सुनियोजित और अगणित विशेषता संपन्न है, यह भू—मंडल । स्वर्ग लोक की कल्पना तो की जाती है, पर उसमें इतनी विशेषताएँ और विचित्रताएँ आरोपित नहीं की जा सकीं जितनी कि अपने भू—लोक में विद्यमान हैं । इसी से इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' नाम दिया गया है । अपने सौर मंडल में जितने भी ग्रह उपग्रह खोजे गए हैं, उनमें आकार की दृष्टि से कई तो पृथ्वी से कई गुने बड़े हैं, पर प्रकृति शोभा, प्राणी समुदाय, वृक्ष, वनस्पति आदि की समता और कहीं नहीं । ऋतुओं का ऐसा परिवर्तन अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं । फिर मनुष्य जैसा प्राणी मिल सकना सर्वथा दुर्लभ ही है जिसे अगणित क्षमताओं, विशेषताओं और विभूतियों का भंडार माना जाता है । भले ही उनमें से कितनी ही प्रसुप्त स्थिति में ही क्यों न बनी रहती हों ?

अन्य ग्रहों की तुलना में बहुत छोटे आकार की इस पृथ्वी में इतना सौंदर्य और इतना सौष्ठव किस प्रकार संभव हुआ । इसके भौतिक कारणों को देखते हुए मात्र एक ही प्रमुख तथ्य सामने आता है कि सूर्य से पृथ्वी की दूरी इतनी सही सार्थक है कि उस संतुलन के कारण ही यह सब संभव हुआ । यदि दूरी कम रही होती, तो वह अग्नि पिंड जैसी बन जाती । अधिक दूर होती, तो शीत की अधिकता से यहाँ किसी प्रकार की हलचलें दृष्टिगोचर नहीं होतीं । सुनिश्चित दूरी का यह सुयोग ही धरती में ऐसी विशेषताएँ संभव कर सका है, जैसी कि ब्रह्मांड भर में अन्यत्र कहीं भी खोजी और जानी नहीं जा सकी ।

तत्वदर्शियों से लेकर विज्ञानवेत्ताओं तक, सब ने एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि ''सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषच''अर्थात् ' 'सूर्य ही जगत की आत्मा है ।'' पृथ्वी का आधिपत्य सूर्य ही बताया गया है और उस तथ्य को पति पत्नी, प्रेमी—प्रेमिका जैसे अनेक अलंकारों से अभिव्यक्त किया गया है ।

सूर्य की किरणें जब धरती पर बरसती हैं तो उस क्षेत्र में उत्साह और पराक्रम दौड़ जाता है । वनस्पतियों, प्राणियों और पदार्थों में हलचलों का दौर चल पड़ता है । दिवाकर के अस्त होते ही सुस्ती, थकान, नींद, अकर्मण्यता आ घेरती है और हलचलों में अधिकांश पर विराम लग जाता है । जहाँ किरणें नहीं पहुँचती वहाँ सीलन, सड़न, नीरसता और निस्तब्धता ही अपना डेरा डालने लगती है । ऐसे स्थानों पर पहुँचने के लिए विषाणु घात लगाने लगते हैं । जहाँ सौर ऊर्जा की जितनी पहुँच है वहाँ उतनी ही बलिष्ठता, सुदृढ़ता का माहौल दृष्टिगोचर होता है ।

इस संसार के प्रमुख तत्व शब्द, प्रकाश और ताप माने जाते हैं। इन्हीं की तरंगें अणु–परमाणु और उनके घटक अपने–अपने परिकर के साथ परिभ्रमण में निरत रहकर विभिन्न पदार्थों के स्वरूप गढ़ती हैं। वस्तुएँ अनेक रंग की दिखाई पड़ती हैं। यह रंग कहाँ से आता है ? उत्तर स्पष्ट है जो वस्तु या पौधा अपने अनुरूप, किरणों में विद्यमान जिन रंगों को अवशोषित कर लेता है, वह उसी रंग का बन जाता है। रंगकर्मी अकेला सूर्य है। उसी ने इस वसुधा के विभिन्न घटकों को अपनी योजना के अनुसार चित्रशाला की तरह रंग भरकर अद्भुत कलाकारिता का परिचय दिया है।

धरती पर अनेक रसायन उपलब्ध होते हैं। उन्हीं के आधार पर वनस्पतियों और प्राणियों की काया का निर्माण होता है। यह रसायन सूर्य और पृथ्वी के संयोग से ही विनिर्मित होते हैं। उन्हीं को खाद्य पदार्थों से लेकर पदार्थ जगत के अन्य अनेक क्षेत्रों में उपजते, बढ़ते और अपने ढंग से काम करते देखा जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि धरती पर जितना कुछ जीवन तत्व विद्यमान है, जितनी भी हलचलें हैं, उसका उद्‌गम केन्द्र सूर्य सत्ता में सन्निहित है। एंग्स्ट्राम एवं ह्यूगनिन्स जैसे वैज्ञानिकों का निष्कर्ष

है कि सूर्य प्रभा में सोडियम, कैल्शियम, बेरियम, जिंक, कापर, आयरन, मैंगनीज, कोबाल्ट, कैडमियम जैसी धातुओं के निर्माण की क्षमता है। मानवी जीवनी शक्ति सूर्य से ही प्राप्त अनुदान है। इसके अभाव में ही आदमी रोगी होता है।

मनुष्य शरीर में अनेकानेक प्रवृत्ति के जीव कोश, ऊतक,क्षार, प्रोटीन, स्राव, हारमोन विटामिन्स आदि पाए जाते हैं। मोटे तौर से इन्हें प्रकृति की देन मान लिया जाता है, पर सूक्ष्म सर्वेक्षण से प्रतीत होता है कि यह भिन्नताएँ मात्र इस कारण विनिर्मित होती हैं कि अमुक स्थानों तक सूर्य का प्रभाव किस स्तर का, किस मात्रा में, किस गति से पहुँचता है ? वहाँ किन घटकों के साथ किस प्रभाव का मिश्रण होकर क्या. प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है ? रसायनों से पदार्थों का निर्माण होते देखा जाता है, पर वस्तुतः रसायन भी सूर्य किरणों का ही उत्पादन हैं।

सृष्टि के आदि से लेकर अब तक धरती के वातावरण में प्राणियों, पदार्थों, मौसमों में जो चित्र–विचित्र परिवर्तन होते रहते हैं। उनके मूल में पृथ्वी और सूर्य के बीच चलने वाले आदान–प्रदान और उसके कारण उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं में अंतर आते रहना ही प्रमुख कारण रहा है। प्रकृति का प्राकृतिक इतिहास जिस प्रकार बदलता रहता है, उसके कारण तलाश करने पर यही निष्कर्ष सामने आता है कि दोनों ग्रहों के बीच जो अंतर पड़ता रहा है, वही इन उथल–पुथलों का निमित्त कारण रहा है।

भविष्य के संबंध में विचार करने पर भी दृष्टि इसी केन्द्र पर जमती है कि सूर्य शक्ति का अगले दिनों कितना और किस प्रकार उपयोग कर सकना संभव होगा ? मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता 'ऊर्जा' पर अवलंबित है। भोजन बनाने, ईंट, सीमेन्ट पकाने, रसायने विनिर्मित करने, धातुएँ पकाने, जलयान, थलयान, वायुयान चलाने, कारखानों को गतिशील रखने, जमीन से पानी निकालने आदि के लिए ईंधन कहाँ से आए, इसके उत्तर में वैकल्पिक ऊर्जा का एक मात्र आधार सूर्य ही रह जाता है।

सूर्य का एक रूप वह है जो अपनी चमक और गर्मी के रूप में हर किसी को प्रत्यक्ष परिचय देता है। दूसरा उसका आध्यात्मिक स्वरूप है, जो अंतःकरण में प्रेरणा, प्रकाश, साहस, उत्साह, पराक्रम, आदि दे सकने में सक्षम है। उसे अध्यात्म–भाषा में 'सविता' कहते हैं। यह जड़ अग्नि पिंड नहीं, वरन् सचेतन प्राण शक्ति है। आवाहन आकर्षण किए जाने पर वह साधक में ओजस् तेजस्, वर्चस् प्रदान करने में समर्थ है। कुंती ने इसी शक्ति का आवाहन करके सूर्य पुत्र कर्ण को जन्म दिया था। कर्ण के शरीर और मन में यही शक्ति कवच–कुंडल बनकर परिलक्षित हुई थी। अन्य अनेक प्रसंगों में सूर्य के माध्यम से चमत्कारी क्षमताएँ प्राप्त किए जाने के उल्लेख हैं। रघुवंशियों का उपास्य सूर्य ही था।

नवयुग में जन मानस को परिष्कृत करने के लिए प्रखर प्रतिभा संवर्धन की आवश्यकता पड़ेगी। महामानवों के उत्पादन अभिवर्धन में सविता की चेतना शक्ति का प्रयोग अभीष्ट होगा। इसके लिए इन दिनों भी उच्चस्तरीय आत्माएँ अपने सूक्ष्म शरीर से विशेष प्रयोग–प्रयत्न कर रही है।

सार्वजनिक प्रयोग के रूप में शांतिकुंज में युग संधि वेला में ऐसा ही एक महापुरश्चरण चल रहा है। यह शारदेय नवरात्रि १९८८ से आरंभ हुआ था और दिसम्बर २००० तक चलेगा। इसकी पूर्णाहुति भी अपने ढंग की अनौखी और विशालकाय होने की संभावना है। साधना विज्ञान में श्रद्धा रखने वाले शांतिकुंज के एक महीने एवं नौ दिन वाले सत्रों में सम्मिलित होने आते हैं और साथ ही इस युग संधि पुरश्चरण में भी भाग लेते रहते हैं।

इन दिनों अणु आयुधों से उद्भूत रेडियोधर्मिता से कैसे जूझा जाए, इस संबंध में प्रसिद्ध दार्शनिक आर्थर कौस्लर ने भी आध्यात्मिक उपचारों का आश्रय लेने की बात कही है। अपना अभिमत ब्लिट्ज के संपादक श्री करेजिया से हुई चर्चा में जो प्रसिद्ध पत्रिका नवनीत (मार्च १९८३) में प्रकाशित हुआ था। व्यक्त करते हुए उनने कहा था कि अणु–आयुधों से भी बढ़कर सामर्थ्य

गायत्री मंत्र में है जो सावित्री–सविता का मंत्र है। वे कहते हैं कि जब विश्व के करोड़ों भारतीय, गायत्री मंत्र का समवेत उच्चारण पुरश्चरण के रूप में करेंगे, तो इस अनुष्ठान से उत्पन्न ऊर्जा ब्रह्मांड में सूर्य को भेदने वाली मिसाइल का काम करेगी तथा ''भर्ग'' से मिलकर आणविक शक्ति को नष्ट कर देगी।

प्राचीनकाल के ऋषियों की तरह अगले दिनों अपने समय के तत्वज्ञानी भी यह अनुभव करेंगे कि मानव प्रकृति में भी इस महत् शक्ति के आधार पर आवश्यक परिष्कार, परिमार्जन एवं परिवर्तन संभव किए जा सकेंगे। सूर्य पुराण, अक्षुण्योपनिषद्, आदित्य हृदय आदि से सूर्य की विशिष्ट क्षमताओं का उल्लेख और उसके ऐसे उपचारों का संकेत है, जिनमें शरीर मन एवं भाव संवेदनाओं को इन शक्ति से उच्चस्तरीय लाभ प्रदत्त किया जा सके। इन प्रतिपादनों के संबंध मे अब ऐसी शोधें होंगी, जिन्हें झुठलाया न जा सके, परीक्षण की कसौटियों पर जिन्हें सही सिद्ध किया जा सके। अगले दिनों सूर्य विज्ञान को प्रमुखता प्राप्त होगी और उनका न केवल पदार्थ शक्ति के रूप में प्रयोग होगा वरन् मानसोपचार के रूप में भी काम में लाया जा सकेगा। सूर्य नमस्कार, सूर्यभेदन प्राणायाम, सूर्योपस्थान आदि विधि उपचारों के असंदिग्ध परिणाम सभी के समक्ष हैं। इससे सूर्य की शक्ति पर विश्वास जमता है।

जिन्हें इन प्रतिपादनों पर दृढ़ विश्वास हो उनके लिए एक सार्वजनीन उपासना प्रावधान बनाया गया है। वह इस प्रकार है– ब्रह्म मुहूर्त में यथासंभव शरीर और मन से शुद्ध होकर नेत्र बंद करके प्रातःकालीन उदीयमान स्वर्णिम सविता का ध्यान करें। भावना करें कि स्वर्णिम सूर्य किरणें अपने शरीर में प्रवेश कर रही हैं और उसकी स्थिति चंद्रमा जैसी बन रही है। सूर्य से प्रकाश ग्रहण करके चंद्रमा चमकता है और अपने शीतल प्रकाश से रात्रि में प्रकाश उत्पन्न करने वाला अमृत बरसाता है। समझना चाहिए कि ध्यान स्थिति में सूर्य किरणों का प्रवेश साधक के शरीर में हुआ और वह चंद्रमा की तरह अमृत ज्योति से भर गया। यह ज्योति

संसार में बिखर कर अमृत ज्योति से भरा–पूरा वातावरण बना रही है। उससे पदार्थ और प्राणी अनुप्राणित हो रहे हैं। उपयोगी वातावरण बन रहा है और अवांछनीयताएँ विदा हो रही हैं।

गायत्री मंत्र सूर्य का मंत्र है। जिन्हें गायत्री मंत्र पर श्रद्धा हो वे उपरोक्त ध्यान के साथ गायत्री मंत्र मानसिक रूप से जपते रह सकते हैं। जिन्हें उसकी उपयोगिता गले न उतरती हो वे मात्र सूर्य का काया में आवाहन और उसके कारण बनते चंद्रोपम शरीर से अमृत ज्योति वितरण का ध्यान मात्र करते रह सकते हैं।

इसके लिए समय पंद्रह मिनट रखा गया है, ताकि वह नियम सभी से सध सके। एक ही भावना एक ही समय यदि लाखों करोड़ों लोग मिल–जुलकर करें तो उस संयुक्त शक्ति के उद्‌भव से सूर्य का चेतना पक्ष, मनुष्य समाज पर अधिक अनुग्रह बरसाएगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

हमें उत्तम अवसरों के सहारे न बैठना चाहिए, बल्कि साधारण समय को उत्तम अवसर में परिणत करना चाहिए।

महाकाल की संकल्पित संभावनाएँ

मनुष्य की अपनी विचारणा, क्षमता, लगन, हिम्मत, उमंग और पुरुषार्थ परायणता की महत्ता भी कम नहीं। इन मानसिक विभूतियों के जुड़ जाने पर उसकी सामान्य दीखने वाली क्रिया–प्रक्रिया भी असामान्य स्तर की बन जाती है और दैवी विभूतियों की समानता करने लगती है। फिर भी उनकी सीमा एवं समय निर्धारित है और सफलता का भी एक मापदंड है। किंतु यदि अदृश्य प्रगति प्रवाह की इच्छा शक्ति उसके साथ जुड़ जाए, तो परिवर्तन इतनी तेजी से होते हैं कि आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। सहस्राब्दियों में बन पड़ने वाला काम दशाब्दियों में, वर्षों–महीनों में संपन्न होने लगते हैं। यह अदृश्य उपक्रम अनायास ही नहीं, किसी विशेष योजना एवं प्रेरणा के अंतर्गत होता है। उसके पीछे अव्यवस्था को हटाकर व्यवस्था बनाने का लक्ष्य सन्निहित रहता है।

आँधी–तूफान आते हैं, तो उड़ती हुई धूल के साथ मुद्दतों का जमा कचरा कहीं से कहीं पहुँच जाता है। खंदक भर जाते हैं और भूमि समतल बनने में इतनी फुर्ती दीखती है, मानों जो करना है उसे कुछ ही क्षणों में कर गुजरे। रेगिस्तानी टीले–पर्वत आज यहाँ तो कल वहाँ उड़कर पहुँचते प्रतीत होते हैं। घटाटोप बरसते हैं तो सुविस्तृत थल क्षेत्र जल ही जल से आपूरित दीख पड़ता है। अस्त–व्यस्त झोंपड़ों का पता भी नहीं चलता और बूढ़े वृक्ष तेजी से धराशाई होते चले जाते हैं। ऐसे ही न ज़ाने क्या अजूबे सामने आ खड़े होते हैं, जिनकी कुछ समय पहले तक कल्पना भी न थी।

पिछले दिनों पर दृष्टिपात करें, तो प्रतीत होता है कि सदियों पुरानी परंपराओं में आमूल–चूल परिवर्तन होने जैसे घटनाक्रम विनिर्मित हुए हैं। भारत ने हजारों वर्ष पुरानी गुलामी का जुआ कुछ ही समय में हलके–फुलके आंदोलन के सहारे उतार फेंका। भूपति कहे जाने वालों का अधिकार छिन गया और प्रजाजन कहे जाने वाले निरीह, भूमिधर बन बैठे। दास–दासियों का क्रय–विक्रय और

लूट, अपहरण एक वैद्य व्यवसाय की तरह सुप्रचलित था, पर अब उसका कहीं अता–पता भी नहीं दीखता! पतियों के शव, जीवित पत्नियों, रखैलों के साथ जलाए या गाड़े जाते थे, पर अब तो उस प्रथा को महिमा मंडित करना तक निषिद्ध है। अस्पृश्यता का पुराना स्वरूप कहीं भी दीख नहीं पड़ता।

विज्ञान की उमंग उभरी तो दो–तीन शताब्दियों में ही रेल, मोटर, जलयान, वायुयान, बिजली आदि ने धरती के कोने–कोने में अपनी प्रभुता का परिचय देना आरंभ कर दिया। अंतरिक्ष में उपग्रह चक्कर काटने लगे। रेडियो, टेलीविजन एक अच्छा खासा अजूबा है। रोकेटों ने इतनी गति पकड़ ली है कि वे धरती के एक कोने से दूसरे पर जा पहुँचते हैं। रौवर्टो ने मानवी श्रम का स्थानापन्न होने की घोषणा की है और कम्प्यूटर मानव मस्तिष्क की उपयोगिता को मुँह बिचकाकर चिढ़ाने लगे हैं। अणु आयुधों तक का कहना है कि लाखों–करोड़ों वर्ष पहले बनी इस समृद्ध और सुंदर धरती को वे चाहें तो क्षण भर में धूलि बनाकर अंतरिक्ष में अदृश्य कर सकते हैं। प्रगति की इस द्रुतगामिता पर हैरत से हतप्रभ होकर ही रह जाना पड़ता है।

यह भूतकाल की विवेचना हुई। अब वर्तमान पर नजर डालें तो प्रतीत होता है कि इक्कीसवीं सदी की शुभ संभावनाएँ हरी दूब की तरह, अपनी उगती पत्तियों के दीख पड़ने के स्तर तक पहुँच रही हैं। प्रतिभा परिष्कार की सामयिक आवश्यकता लोगों द्वारा स्वेच्छापूर्वक अपनाए जाने में आनाकानी करने पर भी वसंत ऋतु के पुष्प–पल्लवों की तरह, अनायास ही वह अपने वैभव का परिचय देती दीखती है। नस–नस में भरी हुई कृपणता और लोभ लिप्सा पर न जाने कौन ऐसा अंकुश लगा रहा है, जैसे कि उन्मत्त हाथी पर कुशल महावतों द्वारा काबू पाया जाता है। भागीरथ की सप्त–ऋषियों की, बुद्ध, शंकर, दयानंद, विवेकानंद, गाँधी, विनोवा की कथाएँ, अब प्रत्यक्ष बनकर सामने आ सकेंगी या नहीं, इस शंका–आशंका से आज जबकि हर कहीं निराशा बलवती होती दीख

पड़ती है, इतने पर भी नियति की परिवर्तन–प्रत्यावर्तन की क्षमता का समापन हो जाने जैसा विश्वास नहीं किया जा सकता। महाकाल की हुँकारें जो दशों दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रही हैं, उन्हें अनसुनी कैसे किया जाए ? युग चेतना के प्रभात पर्व पर, उदीयमान सविता के आलोक को किस प्रकार भुलाया जाए ? युग अवतरण की संभावना गंगावतरण की तरह अद्‌भुत तो है, पर साथ ही इस तथ्य से भी इंकार कैसे किया जाए कि जो कभी चरितार्थ हो चुका है, वह फिर अपनी पुनरावृत्ति करने में असमर्थ ही रह जाएगा ? युग संधि की वर्तमान वेला ऐसी ही उथल–पुथलों से भरी हुई है।

मई ८९ में, ग्राम पंचायतों को विशेष अधिकार देने की बात अचानक बन गई थी। ग्रामीण स्वराज्य गाँधी जी के आरंभिक दिनों का सपना था। उस पर चर्चाएँ होती रहीं, परियोजनाएँ भी बनती रहीं, पर यह किसी को भी भरोसा न था कि ८९ में कुछ माह में ही इस संदर्भ में क्रांतिकारी परिवर्तन इतनी सरलता से हो गुजरेंगे। राज्य परिवर्तन, खून–खराबे के बिना, आक्रोश–विद्रोह उभरे बिना कहाँ होते हैं ? पर समर्थ हाथों से छिन कर सत्ता निर्धनों के, पिछड़ों के हाथों इतनी आसानी से चली जाएगी ? यह बात मानव गले के नीचे उतरती नहीं। फिर भी वह यदि संभव हो जाता है, तो उससे इंकार कैसे किया जा सकता है ?

पिछड़ों का संकल्प के स्तर तक पहुँचना असाधारण रूप से समय साध्य और कष्ट साध्य माना जाता है। फिर भी पिछड़ों को, अशिक्षितों को, दमित महिलाओं को इतना आरक्षण मिलना कि उन्हीं का बहुमत बन पड़े, इस तथ्य के सही होते हुए भी, समझ यह स्वीकार नहीं करती कि यह सब इतनी जल्दी और इतनी सरलता के साथ संपन्न हो जाएगा। इसे मानवी अंतराल का उफान या महाकाल का विधान कुछ भी कहा जाए, जो असंभव होते हुए भी संभव होने जा रहा है।

इस एक उफान के बाद परिवर्तन की घुड़दौड़ समाप्त हो

जाएगी ? ऐसा कुछ किसी को भी नहीं सोचना चाहिए। दूरदर्शी आँखें देख सकती हैं कि इसके बाद ही नई घटा की तरह सहकारी आंदोलन पनपेगा और भ्रष्टाचार की ठेकेदारी अपना रास्ता नापती दीखेगी।

कहा जाता रहा है कि विचौलिए ९४ प्रतिशत डकार जाते हैं और उपभोक्ता के पल्ले मात्र ६ प्रतिशत पड़ पाता है। इतने बड़े व्यवधान से निपटना किस बलबूते पर संभव हो ? जिनकी दाढ़ में खून का चस्का लगा है, उन्हें किस प्रकार विरत होने के लिए सहमत किया जा सकेगा ? इसका उत्तर एक ही है, घोड़े के मुँह में लगाई जाने वाली लगाम, ऊँट की नाक में डाली जाने वाली नकेल, हाथी को सीधी राह चलाने वाले अंकुश की तरह जब सहकारिता के आधार पर अर्थ व्यवस्था चलेगी, तो वह अँधेरगर्दी कहाँ पैर टिकाए रह सकेगी, जो प्रगति योजनाओं को निगल–निगल कर मगर की तरह मोटी होती चली जाती हैं।

राज्य क्रांति में पंचायत राज्य के दूरगामी परिणाम को देखते हुए उसे अभूतपूर्व कहा जा सकता है। इसके पीछे–पीछे सट कर चली आ रही सहकारिता क्रांति है, जिसके सही रूप में चरितार्थ होते ही धन को मध्यस्थों द्वारा हड़प लिए जाने की संभावना लुंज–पुंज होकर रह जाएगी, भले ही उसका अस्तित्व पूरी तरह समाप्त होने में कुछ देर लगे।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा गले की हड्डी की तरह अटकी हुई है। जिनके हाथों में इन दिनों समाज की बागडोर है वे अशिक्षित रह कर अनगढ़ बने रहें, यह कितने बड़े दुःख की बात है। सरकारी धन से इतनी बड़ी व्यवस्था की उम्मीद भी नहीं की जा सकती, विशेषतया तब जब कि पढ़ने वालों में विद्या अर्जन के लिए अभिरुचि ही न हो, इस समस्या का हल अगले दिनों इस प्रकार निकलेगा कि शिक्षितों को अपने समीप के अशिक्षितों में से एक–दो को साक्षर बनाने के लिए बाधित होना पड़ेगा।

हराम की कमाई खाने वालों को जब अपराधी माना जाएगा

और तिरस्कृत किया जाएगा तथा दूसरी ओर श्रमशीलों को पुण्यात्मा मानकर उन्हें मान–महत्व दिया जाएगा, तो उस माहौल में उन अपराधियों का पत्ता साफ हो जाएगा जो जिस–तिस बहाने समय तो काटते हैं, पर उपार्जन में, अभिवर्धन में योगदान तनिक भी नहीं देते। पाखंडी, अनाचारी, निठल्ले प्रायः इन्हीं लबादों को ओढ़े अपनी चमड़ी बचाते रहते हैं।

परिश्रम की कमाई को ही ग्राह्य समझा जाएगा तो फिर दहेज प्रथा, प्रदर्शन, अपव्यय, अहंकार जैसी अनेक अव्यवस्थाओं की जड़ें कट जाएँगी। कुर्सी में शान ढूँढ़ने वाले तब हथौड़ा–फाबड़ा चला रहे होंगे, बूढ़े भी अपने ढंग से इतना कुछ करने लगेंगे. जिससे उन्हें अपमान न सहना पड़े वरन् किसी न किसी उपयोगी उत्पादन में अपने को खपाकर अधिक स्वस्थ, अधिक प्रसन्न और अधिक सम्मानित अनुभव कर सकेंगे, चोरों में कामचोर तब सबसे बुरी श्रेणी में गिने जाने लगेंगे।

यह क्रांतियाँ रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह एक के पीछे एक दौड़ती चली आ रही हैं। उनका द्रुतगति से पटरी पर दौड़ना हर आँख वाले को दृष्टिगोचर होगा। अवांछनीय लालच से छुटकारा पाकर औसत नागरिक स्तर का निर्वाह स्वीकार करने वालों के पास इतना श्रम–समय मानस और वैभव बचा रहेगा, जिसे नव–सृजन के लिए नियोजित करने पर इक्कीसवीं सदी के साथ जुड़ी हुई सुखद संभावनाओं को फलित होते इन्हीं दिनों, इन्हीं आँखों से प्रत्यक्ष देखा जा सकेगा। नियति की अभिलाषा है कि मनुष्यों में से अधिकांश प्रतिभावान उभरें। अपने चरित्र और कर्तृत्व से अनेक को अनुकरण की प्रबल प्रेरणाएँ प्रदान करें।

यह कुछ ही संकेत हैं जो युग संधि के इन बारह वर्षों में अंकुर से बढ़कर छांयादार वृक्ष की तरह शोभायमान दीख सकेंगे, यह आरंभिक और अनिवार्य संभावनाओं के संकेत हैं। इनके सहारे उन समस्याओं का भार अगले ही दिनों हल्का हो जाएगा, जो विनाशकारी विभीषिकाओं की तरह गर्जन–तर्जन करती दीख

पड़ती है। इतना बन पड़ने से भी उस उद्यान को पल्लवित होने का अवसर मिल जाएगा, जिस पर अगले दिनों ब्रह्मकमल जैसे पुष्प खिलने और अमरफल जैसे वरदान उभरने वाले हैं।

हममें से प्रत्येक को गिरह बाँध रखनी चाहिए कि नवयुग का भवन बन रहा है, वह बनकर रहेगा। स्मरण रखा जाना चाहिए कि अगला समय उज्ज्वल भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है, जो इसमें अवरोध बनकर अड़ेंगे वे मात्र दुर्गति ही सहन करेंगे।

विश्वात्मा ने, परमात्मा ने नवसृजन के संकल्प कर लिए हैं, इनके पूर्ण होकर रहने में संदेह नहीं ही किया जाना चाहिए। ''इक्कीसवीं सदी बनाम उज्ज्वल भविष्य'' का उद्घोष मात्र नारा नहीं है—इसके पीछे महाकाल का प्रचंड संकल्प सन्निहित है। उसको चरितार्थ होते हुए प्रतिभा परिष्कार के रूप में देखा जा सकेगा। अगले दिनों इस कोयले की खदान में ही बहुमूल्य मणि-मुक्तक उभरते और चमकते दिखाई देंगे।

महान कार्यों से पहले महान विचार उत्पन्न हुआ करते हैं, अर्थात् महान विचारों के आए बिना महान कार्य हो ही नहीं सकते।

परिवर्तन प्रक्रिया का सार–संक्षेप

–उन्नीसवीं शताब्दी से आरंभ होकर बीसवीं सदी के अंतिम चरण तक कालचक्र अत्यंत द्रुतगति से घूमा है। जितना भला–बुरा पिछले हजारों वर्षों में नहीं बन पड़ा वह इस अवधि में हो चला।

–प्रगति के नाम पर असाधारण महत्व के आविष्कार, बौद्धिक तीक्ष्णता के पक्षधर, प्रतिपादन, शिक्षा, चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में नए निर्धारण, विशालकाय कल कारखाने इन्हीं दिनों लगे हैं। युद्ध सामग्री का उत्पादन एक नया व्यवसाय बनकर उभरा है, अंतरिक्ष को खोज डालना इसी समय की उपलब्धि है, अनेक राज क्रांतियाँ हुई हैं। भारत समेत अनेक देशों को प्राप्त स्वतंत्रता आदि अनेक उपलब्धियों की गणना इस क्रम में हो सकती है।

–बीसवीं सदी में अवगति के नाम पर भी ऐसा कम नहीं हुआ जिसे खेदजनक न कहा जा सके. दो विश्व युद्ध इन्हीं दिनों हुए, जापान पर अणुबम गिराए गए। छोटे–छोटे लगभग १०० युद्ध इसी बीच लड़े गए। नशेबाजी चरम सीमा तक पहुँची, व्यभिचार पाप न रहकर एक सामान्य लोकाचार जैसा बन गया। जिससे पारिवारिक सघनता को भारी चोट पहुँची। जनसंख्या असाधारण रूप से बढ़ी, असंयम और अनाचार फैशन बन गया। प्रकृति प्रकोपों ने कीर्तिमान बनाया, कुरीतियों और मूढ़ मान्यताओं ने सभ्य और असभ्य सभी को एक लकड़ी से हाँका।

–अनौचित्य को रोकने और विकास उपक्रमों को बढ़ाने के लिए भी कुछ न कुछ होता ही रहा, पर वह विशिष्ट प्रगति करने और अवगति पर औचित्य का अंकुश लगाने में यत्किंचित ही सफल हुआ। राष्ट्रसंघ से लेकर सरकारों के विकास कार्य और संस्थाओं के सुधार क्रम इतने सफल न हो सके जिसे कालचक्र की गतिशीलता पर संतुलन बिठा पाने का श्रेय मिल सके। कुल मिलाकर बीसवीं सदी घाटे की रही, उसमें बना कम, बिगड़ा ज्यादा। इस संभावना को भविष्यवक्ता और दूरदर्शी पहले से भी [illegible] और चेतावनी देते रहे थे। ईसाई मान्यता वाला सेवेन टाइम्स.

इस्लाम मान्यता की चौदहवीं सदी, भविष्य पुराण की विनाश, विकृति आदि को मिलाकर देखा जाए तो प्रतीत होता है कि विभीषिकाओं की आशंका अपनी विकरालता ही दिखाती रही।

—कालचक्र का क्रम ऐसा है कि नीचे से ऊपर की ओर चलकर गोलाई बनाता है। बीसवीं सदी की क्षतिपूर्ति इक्कीसवीं सदी में होगी, इसमें विकास उभरेगा और विनाश की खाई पटती जाएगी। इसलिए ''इक्कीसवीं सदी बनाम उज्ज्वल भविष्य'' का उद्घोष उजली परिस्थितियों का परिचायक ही माना जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि में अनेक दिव्यदर्शियों, आंकलन-कर्त्ताओं तथा पाश्चात्य प्रतिभाओं ने एक स्वर से समर्थन किया है। हमें आशा करनी चाहिए कि अगली शताब्दी नया माहौल लेकर आएगी।

—रात्रि की विदाई और प्रभात के आगमन को मध्यांतर संधि वेला कहा जाता है। ऊषाकाल, ब्रह्म मुहूर्त जैसे नाम उस समय को दिए जाते हैं। युग संधि के संबंध में मान्यता है कि वह बीसवीं सदी के अंतिम बारह वर्षों में ही होनी है, सन् १९८९ से २००० तक के बारह वर्ष इसी स्तर के माने जा रहे हैं। इसकी तुलना सर्दी और गर्मी के बीच आने वाले वसंत से अथवा गर्मी और सर्दी के मध्यवर्ती वर्षाकाल से की जा सकती है। इस अवधि में गलाई और ढलाई की दोनों परस्पर विरोधी दीखने वाली क्रिया—प्रक्रिया चलती दिखाई देगी। अवांछनीयता के उन्मूलन वाला उत्साह उभरेगा और नवसृजन के भव्य प्रवाह का आगमन दीख पड़ेगा।

—संधिकाल का महत्व असाधारण माना गया है। धान्यों की मध्यवर्ती नोक ही उपजाऊ होती है। गाड़ी के दो पहियों को चलाने में मध्यवर्ती धुरी की ही प्रमुख भूमिका होती है। भोर होते ही घर—घर में बुहारी लगती है और कुछ पकाने के लिए चूल्हा गरम किया जाता है। यह दोनों ही प्रयोग युग संधि के मध्यांतर में नए सिरे से नए उत्साह से कार्यान्वित होते दीख पड़ेंगे।

—इन दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने के लिए प्रखर प्रतिभाएँ सृजनशिल्पी के रूप में उभरेंगी और ऐसे पराक्रम प्रस्तुत करेंगी

जिन्हें असाधारण की संज्ञा मिलेगी। हर काम मध्य गति से तो सदा सर्वदा चलता ही रहता है, पर विशेष समय में विशेष प्रयास ही अपनाए जाते हैं। अरुणोदय का स्वर्णिम सूर्य विशेष रूप से सुहावना होता है। अरुणोदयकाल में चिड़ियों को फुदकते, कलियों को खिलते, मंदिरों में शंख बजते, ध्यान होते एवं हर क्षेत्र में नए सिरे से नई हलचल को उभरते देखा जाता है।

–प्राणवान् कर्मयोगी, उग्र सिद्धि के इन दिनों में अपने में नई उमंगे उभरती देखेंगे। वे संघर्ष एवं सृजन के दोनों कार्यों में अपने पुरुषार्थ का, हनुमान एवं अंगद जैसा परिचय देंगे। उनने लंका दमन, रामराज्य के सतयुग के सृजन में अपने को पूरी तरह खपाया था। इन भावनाओं से अनुप्राणित असंख्यों को देखा जा सकेगा, रीछ–वानर, गीध, गिलहरी, केवट, शबरी जैसे अल्पशक्ति वालों की भी भूमिका देखने योग्य होगी। प्रखर प्रतिभाएँ तो युग सृजेताओं जैसी ऐतिहासिक भूमिका संपन्न करेंगी। युग संधि के बारह वर्षों में यह उत्साह उभरता–उछलता दिखाई दे रहा है। स्वार्थों में कटौती और परमार्थ अपनाने के लिए हर प्राणवान में प्रतिस्पर्धा ठनेगी।

शुभ के आगमन और अशुभ के पलायन के चिह्न युग संधि के दिनों में ही अंकुरित होने लगेंगे। इक्कीसवीं सदी में नवयुग का वट वृक्ष बढ़ता परिपक्व होता जाएगा और कुछ ही वर्षों में इतना प्रौढ़ हो जाएगा कि भूतकाल से तुलना करने वाले उस ख्याति को एक स्वर से नवयुग कह सकें।

–नवयुग समुद्र मंथन जैसा होगा, उसमें समय की आवश्यकता के अनुरूप चौदह रत्न निकलेंगे। विज्ञान का दैत्य और अध्यात्म का देव दोनों ही पक्ष मिलकर समुद्र मंथन की भूमिका संपन्न करेंगे। प्रकृति मंदराचल पर्वत जैसी मथनी का काम करेगी, मानवी उत्साह वासुकि सर्प जैसी भूमिका संपन्न करेगा। दिव्य प्रेरणा का अदृश्य सहयोग कर्मावतार की तरह इन सब का भार अपनी पीठ पर धारण किए हुए होगा।

—राजशक्ति, बुद्धिशक्ति, धनशक्ति की महिमा, महत्व से सभी परिचित हैं। नवयुग का अवतरण करने में चौथी शक्ति उभरेगी– ''प्रखर प्रतिभा''। इसे भाव संवेदनाओं से भरी पूरी आदर्शवादी उमंग भी कह सकते हैं, यह सभी सुसंस्कारी नर–नारियों को अनुप्राणित करेंगी जो 'हम बदलेंगे, युग बदलेगा' का आदर्श प्रस्तुत कर रहे होंगे।

—मानव धर्म के रूप में समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को सार्वभौम मान्यता मिलेगी, इसका तत्वदर्शन नवयुग का धर्मशास्त्र बनेगा और व्यवहार में उतरेगा।

—परिवर्तन का प्रवाह युद्धोन्माद को शांत करेगा, शांति और सहयोग का वातावरण बनेगा। इन दिनों भी ईरान, ईराक, कम्पूचिया, नामीबिया, अंगोला, पनामा, निकारागुआ आदि क्षेत्रों में ठंडक आई है, मनोमालिन्य वाले क्षेत्रों में रुझान बदला है, यह क्रम चलता रहेगा।

—विज्ञान का उपयोग अब युद्ध साधनों की प्रतिस्पर्धा में न होगा। बड़े शहर और बड़े कारखाने अनुपयोगी सिद्ध हो रहे हैं, इनकी ओर से मुँह मोड़ते ही देहात कस्बों के रूप में बदलेंगे। कुटीर उद्योग पनपेंगे और ग्राम्य विकास की नई लहर चलेगी। विज्ञान, पूँजी और कौशल के उसी केन्द्र पर केन्द्रित हो जाने से प्रदूषण, शहरी घिचपिच, अस्वस्थता और बेकारी जैसी प्रमुख समस्याओं का समाधान निकलता चला जाएगा।

—जनशक्ति अपनी प्रगति की आवश्यकताओं को अपने बलबूते संभव बनाएगी। अनुदानों, अनुग्रहों की अपेक्षा न करके समयदान एवं अंशदान के सहारे इतने साधन जुटा लेगी जिनके सहारे सर्वतोमुखी प्रगति के लिए जिन आधारों को खड़ा किया जाना है उन्हें बिना किसी कठिनाई के जुटाया और बढ़ाया जा सके।

—समुद्री जल को पेय बनाना और सूर्य शक्ति को ऊर्जा के लिए प्रयुक्त करना, यह दो कार्य इक्कीसवीं सदी की प्रधान उपलब्धि होगी, रेगिस्तान उपजाऊ भूमि में बदले जा सकेंगे।

–समझदारी बढ़ने के साथ जनसंख्या वृद्धि का अनौचित्य सब की समझ में आ जाएगा और अमर्यादित प्रजनन समाप्त हो जाएगा। आधी जनसंख्या नारी के रूप में उपेक्षित, पिछड़ी और गई गुजरी स्थिति में इन दिनों पड़ी है। अगली शताब्दी में नर और नारी एक समान बनकर रहेंगे, फलतः जनशक्ति दूनी हो जाएगी।

–एकता और समता का औचित्य–समझा और आग्रह किया जाएगा। संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा, जाति आदि के नाम पर चल रही विषमता घटती और मिटती जाएगी, एक धर्म एक जाति एवं एक भाषा जैसी मान्यताएँ दिन–दिन प्रबल होती जाएँगी।

–साहित्य, संगीत और कला के अधिष्ठाता, भावना और विचारणा को परिष्कृत करने की योजना बनाएँगे और उसे पूरी करेंगे। सबसे बड़ी बात होगी, मनुष्य का चिंतन, चरित्र और व्यवहार बदलेगा। उसमें मानवी गरिमा के प्रति आस्था का समावेश होगा मर्यादाओं ओर वर्जनाओं का सभी ध्यान रखेंगे। व्यक्तिवादी संकीर्ण स्वार्थपरता के प्रचलन के प्रति आक्रोश उभरेगा और उसके स्थान पर समाज निष्ठा एवं परमार्थ परायणता श्रेय संपादित करेंगे।

–भावी संभावनाओं में से यहाँ कुछ का ही उल्लेख है, स्थानीय परिस्थितियों और प्रथाओं के अनुरूप सब में अभीष्ट परिवर्तन चल पड़ेगा। इसे करेगा कौन ? इसका उत्तर एक ही है कि जागृत मनुष्यों में से अधिकांश की महत्वाकांक्षाएँ इसी दिशा में मुड़ेंगी कि वे युग परिवर्तन जैसे महान सुयोग में अपनी भूमिका अग्रगामी रखें और युग सृजेता के रूप में अपनी अनुकरणीय, अभिनंदनीय ऐतिहासिक भूमिका निभाएँ।

–सेवा और सृजन की उमंगे तूफानी गति से उभरेंगी, इसलिए सुधार परिवर्तन के आयोजन स्थानीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं साधनों के अनुरूप ही होंगे, ऐसे देवमानवों का बाहुल्य होगा जो एक जीवंत सर्जन संस्था के रूप में सोचने और करने में कटिबद्ध हुए दीख पड़ेंगे। इस परिवर्तन का वास्तविक

श्रेय तो अदृश्य वातावरण के नियंता, अभिनव व्यवस्थापक को मिलेगा, पर प्रत्येक क्षेत्र के सभी स्तर के मूर्धन्य श्रेय प्राप्त करेंगे। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक संस्था–संगठन भी उस श्रेय से वंचित न रहेंगे, अपनी–अपनी भूमिका के अनुरूप सभी यशस्वी बनेंगे।

–नवयुग की संभावनाओं को कपोल कल्पना समझने, उपहास उड़ाने, निष्क्रिय रहने वाले तो बहुत थोड़े होंगे। यों अड़ंग–अटकने और प्रतिगामिता बनाए रहने वाले दुराग्रहियों की भी सर्वथा कमी न रहेगी, पर अंततः जीतेगा सृजन ही। प्रकाश का ही अभिनंदन होगा और सतयुग की वापसी की सुखद संभावनाएँ अगले दिनों साकार होकर रहेंगी।

–इस असंभव को संभव कर दिखाने वाले अग्रगामी अपनी प्रखर प्रतिभा का किस प्रकार, किस सीमा तक परिचय देते हैं– इसी को नवयुग की अद्भुत उपलब्धि के रूप में देखा, समझा और आँका जाएगा।

भविष्य की चिंता छोड़ देनी चाहिए, उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, यदि चिंता की ही जाए तो चरित्र की उन्नति की करनी चाहिए।